चाणक्य नीति

प० राधाकृष्ण श्रीमाली

डी० पी० वी०
प्रथम सस्करण १९८६ / मूल्य तीस रुपये /
प्रकाशक अनुराग प्रकाशन, महरौली नई दिल्ली ११००३०
मुद्रक गोयल प्रिंटस, दिल्ली ११००३२

Chanakaya Niti by Radhakrishan Shrimali Rs 30 00

चाणक्य एक सक्षिप्त परिचय

एक समय था मौर्यकाल और चद्रगुप्त मौर्य शासक थे। उस समय चाणक्य राजनीतिक गुरु थे। आज भी कुशल राजनीति विशारद को चाणक्य की सज्ञा दी जाती है। चाणक्य ने सगठित, सपूर्ण आर्यावर्त का स्वप्न देखा था और तदर्थ उन्होंने सफल प्रयास किया था।

चाणक्य अनोखे, अदभुत, निराले, ऐसे कुशल राजनीतिज्ञ थे कि उन्होंने मगध देश के नद राजाओं की राजसत्ता का सर्वनाश करके 'मौर्य राज्य' की स्थापना की थी।

चाणक्य का जन्म का नाम था विष्णुगुप्त परतु अत्यत कुशाग्र बुद्धि होने के कारण वह 'चाणक्य' कहलाए। कुटिल राजनीति विशारद होने के कारण इन्हे कौटिल्य नाम से भी सबोधित किया गया। कौटिल्य सभवत इनका गोत्र रहा हो। आप चद्रगुप्त मौर्य के महामत्री, गुरु, हितैषी तथा राज्य के सस्थापक थे। चद्रगुप्त मौर्य को राज्य पर प्रतिष्ठित करने का कार्य इन्ही के बुद्धि कौशल का परिणाम था।

एक किवदती चाणक्य और राजा नद की शत्रुता के बारे मे प्रचलित है। एक बार राजा नद ने अपने पिता के श्राद्ध का आयोजन किया। उसने अपने महामंत्री विकटार उपनाम राक्षस को आदेश दिया कि वह किसी योग्य पडित को निमत्रण दे आए। राक्षस ऐसे ही किसी पडित की खोज मे निकल पडा।

विकटार मडप से निकला तो उसकी आखो के सम्मुख नद के द्वारा किये गए अत्याचारो का सारा माहौल, उसका चित्र घूम गया कि किस प्रकार उसने उसके पिता के साथ निरपराध विकटार, उसकी माता

और समूचे परिवार को काल कोठरी मे बद कर दिया था। किस प्रकार उसके बधुओ को भूख और प्यास से तडपा तडपाकर मारा गया था। कहा सात कैदी और कहा प्रतिदिन एक छटाक चन व पावभर पानी। प्राणी के जीवन रक्षाथ यह सामग्री क्या पर्याप्त थी ? पर विवशता थी। इस नद राजा ने कैसी निदयता से सपूण परिवार—माता पिता, भाई-बहन की हत्या करवा दी थी। कैसा घिनौना और भयानक दृश्य था। मानवता हाय हाय कर उठी थी। हरएक दिन एक एक प्रियजन जल की बूद के आभाव म तडप-तडपकर दम तोड देता था। युवा विक्टार एकदम असहाय होकर देखता रह जाता था। तडपन, रोन, बिलखने, अफसोस करन को भी स्थान न था। खुली हवा म श्वास लेना भी दुश्वार था।

आज अवसर विक्टार के हाथ लगा था। क्रोध स वह तडप उठा, माथे पर सिकन गहरी हो गइ, हाथ की मुट्ठिया कस गइ, दात पर दात जम गए। आह! इसी नद ने, हा हा, इसी नद ने एक एक कर मेरे सब बधुओ की हत्या करवा दी इसी दुष्ट, अत्याचारी न! मेर कुल के नाश का उत्तरदायी मात्र यही है! मै बदला लूगा। आज अवसर हाथ आया है, इसे हाथ से जाने नही दूगा। प्रतिशोध! हा हा-हा प्रतिशोध! श्राद्ध के लिए मैं एसा ब्राह्मण ही खोजकर लाऊगा जा नद वश के एक-एक सदस्य को ठीक उसी प्रकार चुन चुनकर मारेगा जैसे इसने मेरे परिवार को मारा है। मेरी आत्मा को ठडक शाति तभी मिलगी! तभी मेरा प्रतिशोध पूण होगा!

विचार करता रहा! बडबडाता रहा! अपनी राह चलता रहा! एकाएक उसकी दष्टि एक ब्राह्मण पर पडी। पहाड सा शरीर काले नाग सा, अमावस्या की रात का सा स्याह काला रग। सिर पर खूब घने पर रूखे बाल, गौ पुच्छ समान लबी मोटी शिखा (चुटिया)। आखे छोटी छोटी परतु रक्त से लिथडी हुइ। डरावनी। होठ मोट और आग को लटकत हुए। बडौल बेढब। परतु मुख पर अपूव तज, माथे पर चदन का त्रिपुड और गल मे यज्ञोपवीत। वह अद्भुत मानव कुश क झाडा को खोद खादकर उनकी जड मे कुछ उडेल सा रहा था!

उत्सुकता बढना स्वाभाविक था। विकटार की उत्सुकता बढी। साष्टाग दडवत करके विकटार बोला—"मैं नदराज का कार्याध्यक्ष विकटार आपको प्रणाम करता हू और आपका परिचय जानने तथा यह जानने का इच्छुक हू कि कुशा को जड़ से उखेडने में आप इतना परिश्रम क्यो कर रहे है ? आप यदि मुझे आदेश दें तो मैं कल ही राज्य कर्मचारियो को लगाकर इस भूमि को साफ करवा लू।"

ब्राह्मण ने आशीर्वाद देकर कहा—"इस कुशा ने मेरे प्रति अपराध किया है अत मैं इसे अपने हाथो से नष्ट करना चाहता हू। मेरा नाम विष्णुगुप्त है परतु पिता चणक की सतान होने के कारण लोग मुझे चाणक्य भी कहते हैं। तक्षशिला विश्वविद्यालय मे मैंने राजनीति शास्त्र का अध्ययन किया है। मैं वहा का स्नातक हू। एक समय मेरे पिता चणक जगल मे भ्रमण कर रहे थे। कुशा की एक फास उनके पाव मे चुभ गई और घाव के बिगड जाने के कारण उनकी मृत्यु हो गई। अत मैं धरती का कुशा विहीन, निर्मूल कर देना चाहता हू। मैं इनको खोदकर इनकी जडो मे छाछ व शहद इसलिए डाल रहा हू कि उनकी बची हुई जडें भी समाप्त हो जाए।"

यह सुनकर विकटार ने सोचा—'बस! मेरे मतलब का ब्राह्मण मुझे मिल गया। इसकी कुरूप देह को देखकर राजा नद अवश्य बिगडेगा और यदि यह ब्राह्मण एक बार नद का शत्रु बन गया तो उसके वश को उसी तरह उखाडकर फेंक देगा जैसे यह कुश को जड मूल से उखाडने पर तुला है।'

तीर सही निशान पर लगा। नदराज कुरूप चाणक्य का अपमान करने से चूका नही और अपमानित विष्णुगुप्त चाणक्य नद वश को निर्मूल करने की प्रतिज्ञा करके अपने आसन से उठकर चला गया।

श्राद्ध निमत्रण मे कुरूप व काले होने के कारण तिरस्कृत करके उठा दिए जाने के अपमान से क्रुद्ध होकर स्वाभिमानी, तपस्वी ब्राह्मण ने नद शासन का तख्ता ही नही उलटा अपितु नदवश का ही नाश कर डाला। जो प्राणी अपनी नीति से साम्राज्यो का विनाश और निर्माण कर सकता है, उसकी नीति कितनी महत्त्वपूर्ण होगी इसका अनुमान सहज ही

लगाया जा सकता है।

चाणक्य के जन्म स्थान के बारे मे इतिहास मौन है। परतु उनकी शिक्षा दीक्षा तक्षशिला विश्वविद्यालय म हुई थी। चाणक्य और चद्रगुप्त मौर्य का समय एक ही है—३२५ ई० पू० मौर्य सम्राट चद्रगुप्त का समय था यही समय चाणक्य का भी है। चाणक्य का निवास स्थान शहर से बाहर पर्णकुटी थी जिसे देखकर चीन के ऐतिहासिक यात्री फाह्यान ने कहा था—' इतने विशाल देश का प्रधान मत्री ऐसी कुटिया मे रहता है!" तब उत्तर था चाणक्य का—"जहा का प्रधान मत्री साधारण कुटिया मे रहता है वहा के निवासी भव्य भवनो मे निवास किया करते हैं और जिस देश का प्रधान मत्री राज प्रासादो म रहता है वहा की सामान्य जनता झोपडियो म रहती है।'

आह! वह देश महान क्यो न होगा जिसका प्रधान मत्री इतना ईमानदार जागरूक चरित्र का धनी व कर्तव्यपरायण हो।

कठिन तप के बाद मानव देह प्राप्त होती है और इस देह की सार्थकता तब है जब व्यक्ति समाज हित मे लिप्त हो। जहा निजी हित व समाज हित को अलग समझा जाता हो, व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति सुख सुविधा मे जीवन लगा हो, वहा समाज हित की कल्पना ही व्यर्थ है। और ऐसा कर वह अपना हित भी कहा कर पाता है? कारण? वह भी तो समाज का एक अग है। एक ओर मानसिक अहित, अकल्याण होता है, दूसरी ओर मानवीयता का भी लोप हो सकता है। अमृत से मृत्यु की ओर बढने लगता है। उसे अतत समाजद्रोही, आत्मघाती असुर बनने पर विवश होना पडता है। वे व्यक्ति ही धन्य हैं जो समाज हित मे आत्मोत्सर्ग कर लेते हैं। व्यक्ति व समाज हित का अलगाव ही मानव समाज का आत्मघाती स्वरूप है।

सुशिक्षा की दवा ही उस आत्मघाती रोग से व्यक्ति को बचा सकती है। देह का यह रोग सत्साहित्य द्वारा मिटाया जा सकता है। चाणक्य ने समाज राज्य राष्ट्र को सुशिक्षित करने के लिए ही अपने राजनैतिक साहित्य की रचना की। राजनैतिक गुरु आर्य चाणक्य को उनकी महती राजनैतिक सेवाओ के कारण जगद्गुरु का उच्चासन स्वयमेव प्राप्त

हो गया—

नाभिषेको न संस्कार सिंहस्य क्रियते वने ।
विक्रमार्जितसत्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ।।

भला सिंह का भी कोई वन म राज्याभिषेक करता है ! उसे कोई राज्य दीक्षा देता है क्या ? अपने लिए स्व भुजबल से ही सम्मानित पद का उपार्जन करने वाला सिंह स्वयमेव 'मृगेन्द्र' बन बैठता है । यह उक्ति चाणक्य जैसों के लिए ही बनी है ।

२५०० वर्ष ई० पू० चणक के पुत्र विष्णुगुप्त ने भारतीय राजनयिकों को राजनीति की शिक्षा देने के लिए अर्थशास्त्र लघु चाणक्य, वृद्ध चाणक्य चाणक्य नीति शास्त्र आदि ग्रंथों के साथ व्याख्यायमान चाणक्य सूत्रों का निर्माण किया था ।

समाज को नीति सिखाना वस्तुत समाज के अविभाज्य अंगों मूलभूत इकाई अर्थात व्यक्तियों को ही राजनीति सिखाना है । राजनीति में 'सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्ना' के अनुसार मानव संतान को मनुष्यता से समृद्ध करने वाले संपूर्ण शास्त्र व धर्म स्वभाव से सम्मिलित हैं । राजनीति पर ही समस्त धर्मों के पालन का दायित्व है ।

राजनीति का स्वरूप यही है कि आन्वीक्षिकी त्रयी व वार्ता तीनों के योग क्षेम दंड में ही सुरक्षित रहते हैं । संसार दंडमय होने पर ही आत्म विद्या में रत होता है अन्यथा नहीं । उस दंड नीति का उपदेष्टा शास्त्र भी दंड नीति कहलाता है । दंड नीति के अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्ति की रक्षा, रक्षित का वर्द्धन तथा वर्द्धित का लोक कल्याण कार्यों में विनियोग नामक चार फल हैं । जीवन यात्रा दंड नीति की सुरक्षा पर ही निर्भर है । इस कारण राजनीति संपन्न लोग सदा अन्याय अत्याचार के विरुद्ध दंड प्रयोगार्थ उद्यत रहें ।

ज्ञान कर्म समुच्चयवादी आर्य चाणक्य ने अपने राष्ट्र को राजनीति सिखाना ही मुख्य लक्ष्य बना लिया था । चाणक्य नीति का सारांश समाज को इस प्रकार सुशिक्षित करना है कि वह अपनी राजशक्ति को केवल उनके हाथ में रहने देने का सुनिश्चित प्रबंध करके रखे, जो अपने आपको समान हित के सुदृढ़ बंधनों में बांध रखने में न केवल तृप्त और गौरव

अनुभव करते हो प्रत्युत इसे ही अपना अहोभाग्य भी मानें।

समाज व्यक्ति का विकास क्षेत्र है। जहा समाज नही है वहा कर्तव्य भी कहा? समाजहीन लोग मात्र शुद्ध स्वार्थों म उलझे पडे रहते हैं। असामाजिक व्यक्तियो के प्रमाद मे उनक सामाजिक हित का अनधिकारी लाग व्यक्तिगत स्वार्थो को साधन बनान का अवसर पा लेते हैं, फलत लागों के व्यक्तिगत स्वार्थो की भी अकथनीय दुर्गति होती है।

समाज का निमाता कौन? ग्राम या नगर? गाव ही ह उसका निर्माता। नगर तो परस्पर सबधहीन सस्था है। भोगी राजाओ के स्वार्थों से नगरो का निमाण हुआ है। भोगलक्ष्मी राज्य सस्थाए नगरो को बढावा देती हैं। गावों को उजड जान के लिए विवश करती है। समाज परस्पर सपद विपद मे सहानुभूति रखता है। परस्पर सहायक बनते हैं। गावा मे भिन्न भिन्न जाति या धर्म सप्रदायो के लोगो का कुटुब सबध जैसा पवित्र घनिष्ठ सबध होता है। यह माधुर्य शहरा म कहा?

आज भारत मे राजशक्ति हथियाने वाले भिन्न भिन्न दला की बाढ सी आ गई है। अपना स्वाथ पूरा करना एकमात्र लक्ष्य बन गया है। बाढ ही खेत को खा रही है। मिथ्या महत्त्वाकाक्षी सफेदपाश नगरीय निवासिया के मन की उपज है यह। असामाजिक वृत्ति का ही यह परिणाम है। ग्राम्य करो स नगर पाले जाते है। राष्ट्र भक्ति का लोप हो गया है। सपूर्ण देश का नेता कही दिखाई नही देता। गाधी लौह पुरुष पटेल तिलक सुभाष जसी नतत्व शक्तिया कहा हैं आज?

अस्ताचलगामी होते सूय न गव स कहा—'मैं अधकार को ला रहा हू। है एसा कोई जो मुझे अधकार लाने से राक सके!' एक बार, दो बार तीन बार जब यही पुनरावत्ति हुई तो एक नन्हे से दीपक न उठकर कहा—'मैं शक्ति भर प्रयास करूगा।' आज सचमुच ऐसे ही दीपक की जरूरत है। नगरीय जन क प्रभुता के लाभ का दुष्परिणाम खडित भारत को भोगना पड रहा है। चाणक्य नीति को जो सवमान्यता मिली है वह समाज की राजशक्ति प्रभुता लोभी हाथा मे न रहन देन की शिक्षा प्रचलित करना चाहन से मिली है। व ये प्रभुता-लाभी जन के शत्रु।

स्वय पणकुटी मे रहकर नीति सचालन करते थे ।

जो राजशक्ति समाज तथा उमकी धन शक्ति को मिथ्या प्रतिष्ठा व आडबर पूण करने मे काम मे आने लगती है उसका सवभक्षी पट सुरसा के पेट क समान कभी भरना नही। वह भस्मक रागी के समान राष्ट के समस्त खाद्याश को खाकर राष्ट्र को भूखा, निवल, नगा बनाए रखता है। यो वह शत्रु है समाज का। राज्य, समाज, राष्ट्र को वाह्य तथा आभ्यतरिक दोनो प्रकार के शत्रुआ से सुरक्षित रखना राजशक्ति का उत्तरदायित्व है।

चाणक्य के अनुसार आदश राज्य सस्था वही है जिसकी याजनाए प्रजा को उसके भूमि धन धान्यादि पात रहन के मूलाधिकार से वचित कर देन वाली नही, उसे लबी चौडी योजनाआ के नाम से कर भार से आक्रात न कर डाल। राष्टोद्धारक याजनाए राजकीय व्ययो म से वचत करके ही चलाई जानी चाहिए। राजा ग्राह्य भाग दकर बचे प्रजा क टुकडा के भरोसे पर लबी चौडी योजना छेड वैठना प्रजा का उत्पीडन है।

चाणक्य का साहित्य समाज मे शाति, न्याय, सुशिक्षा, सवतोमुखी प्रगति सिखान वाला ज्ञान भडार है। राजनीतिक शिक्षा का यह दायित्व है कि वह मानव समाज का राज्य सस्थापन, सचालन, राष्ट्र सरक्षण तीना काम सिखाए।

दुर्भाग्य है भारत का कि चाणक्य के ज्ञान की उपक्षा करके देशी-विदेशी शत्रुआ को आक्रमण करन का निमत्रण देकर अपन को शत्रुआ का निरुपाय आखेट बनान व ली आसुरी शिक्षा को अपना लिया है। नैतिक शिक्षा, धम शिक्षा का लाप हो गया है। चरित्र निर्माण को वहिष्कृत कर दिया है। मात्र लिपिक (क्लक) पदा करन वाली, सिद्धातहीन, पट पालन की शिक्षा रह गई। समाज धीरे धीरे आसुरी रूप लेता रहा है। अब दास सम्मान या आत्मगौरव की उपक्षा करता है। स्वाभिमान का जनाजा निकाला जा रहा है।

श्री मनुष्य मे दप और मोह उत्पन्न करती है। श्री को नतिकता के बधन मे सीमित रखने से ही उस मानवोपयोगी बनाकर रखा जा सकना

चाणक्य के व्याख्यायमान सूत्र

१ जितात्मा सर्वार्थै संयुज्येत।

जितात्मा नीतिमान लोग समस्त संपत्तियों में संपन्न होकर रहें।

२ सम्पाद्यात्मानमन्विच्छेत् सहायवान्।

राजा को अपने राजोचित गुणों से संपन्न बनाकर अपने ही जैसे गुणी सहायकों या सहधर्मियों को साथ रखकर राजभार लेना चाहिए।

३ अविनीत स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत।

अविनीत व्यक्ति को केवल स्नेही होने से हितकारी रहस्यों की आलोचना में सम्मिलित न करे।

४ प्रामादाद् द्विषतां वशमुपयास्यति।

यदि राजा या राज्याधिकारी मंत्ररक्षा में थोड़ा सा भी प्रमाद करेंगे अर्थात् मंत्र सुनने के अनधिकारी व्यक्तियों से कतव्य की गोपनियता को सुरक्षित न रख सकेंगे तो वे अपना रहस्य शत्रुओं को देकर उनके वश में चले जाएंगे।

५ मन्त्र चक्षुषा परछिद्राण्यवलोकयन्ति।

विजीगीषु राजा लोग मंत्रियों की परामर्श रूपी आंख से प्रतिपक्षियों की राष्ट्रीय निबलताओं को देख लेते हैं।

६ आपत्सु स्नेह सयुक्त मित्रम ।

विपत्ति के दिनो मे (जबकि सारा ससार विपदग्रस्त को विपन्न होने के लिए अकेला छोड भागता है) सहानुभति रखने वाले लोग मित्र कहलाते हैं।

७ न चालसस्य रक्षित विवर्धते ।

अलस सत्यहीन प्रय नहीन व्यक्ति का दैववश सचित राज्य स्वय कुछ काल तक सुरक्षित दीखने पर भी उसके बुद्धिमाद्य से वृद्धि को प्राप्त नही होता।

८ तन्त्र स्वविषयकृत्येष्वायत्तम ।

स्वराष्ट्र व्यवस्था तन्त्र कहाती है और वह केवल स्वराष्ट्र सबधी कर्तव्यो से सबद्ध रहती है।

९ एकान्तरित मित्रमिष्यते ।

निकट वाले शत्र राज्य मे अगला राज्य जिसकी हमारे शत्रु से शत्रुता रहना आवश्यक स्वाभाविक है, उस शत्रु के विरुद्ध स्वभाव मे ही हमारा मित्र बन जाता है।

विवरण—किसी शत्रु से शत्रुता करने वाले अनेक राष्ट्रो का परस्पर मित्रता बधन होना स्वाभाविक है।

१० सुखस्य मूल धम ।

धम (नीति या मानवोचित कर्तव्य का पालन) सुख का मूल है।

११ धमस्य मूलमथ ।

धम का मूल अथ है—धम अर्थात् नीतिमत्ता को सुरक्षित रखने मे राज्यश्री (अर्थात् सुदढ सुपरीक्षित सुचिंतित राज्य-व्यवस्था) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जगत को धारण करने (जगत को ऐहिक अभ्युदय तथा मानसिक उत्कर्ष देने) वाला

नीति को राष्ट्र मे सुरक्षित रखने मे अथ अर्थात् राज्यश्री ही मुख्य कारण होती है ।

१२ अयस्य मूल राज्यम् ।

राज्य (राज्य की स्थिरता) ही अथ (धन धा‍यादि सपत्ति या राज्यश्वर्य) का मूल (प्रधान कारण) होना है ।

१३ राज्यमूलमिन्द्रियजय ।

अपनी इद्रियो पर अपना आधिपत्य प्रतिष्ठिन रखना राज्य का (राज्य मे राज्यश्री आने और उसके निरकाल तक ठहरने का) सवसे मुख्य कारण है ।

१४ इन्द्रियजयस्य मूल विनय ।

विनय ही इद्रियो पर विजय पाने का मुख्य सावन है—विनीतो की सगत मे रहकर उससे शासन सवधी सत्यासत्य का विचार सीखकर सत्य को पहचानकर सत्य के माधुर्य से मधुमय होकर, अहकार त्यागकर सत्य के बोझ के नीचे दवकर नम्र हो जाना विनय अर्थात् सत्याधीन हो जाना है । पात्रापात्र परिचय, व्यवहारकुशलता, सुशीलता, शिष्टाचार, सहिष्णुता, उचितज्ञता, न्याय अन्याय तथा काय-अकार्य विवेक आदि सव विनय के ही व्यावहारिक रूप है ।

१५ विनयस्य मूल वृद्धोपसेवा ।

ज्ञानवृद्धो की सेवा विनय का मूल है—विनय अर्थात् नैतिकता, नम्रता, शासनकुशलता, आदि रूपो वाली सत्यरूपी स्थिर सपत्ति अनुभवी ज्ञानवृद्ध लोगो की सेवा मे श्रद्धापूवक वार वार ज्ञानार्थी रूप मे उपस्थित होते रहने से ही प्राप्त होती है । मनुष्य को ज्ञानवृद्धो के सत्सग से सत्यरूपी स्थिर धनसपत्ति हो जाती है ।

१६ वृद्धसेवया विज्ञानम् ।

मनुष्य वृद्धो की सेवा से व्यवहार कुशलता प[illegible]

पहचानना सीख।

१७ प्रकृतिकोप सर्वकोपेभ्यो गरीयान।

राज्य के विरुद्ध जनरोष समस्त रोषों से भयंकर होता है।

१८ प्रकृतिसम्पदा ह्यनायकमपि राज्य नीयते।

प्रजाजनों के नीति सपन्न होने पर किसी कारण राजा का अभाव हो जाने पर भी राज्य सुपरिचालित रहता है।

१९ अथसपत प्रकृतिसपद करोति।

राजाओं की अथमपत्ति से प्रजाओं के भी अथ की वृद्धि स्वभाव से हो जाती है। शासन की सुव्यवस्था राजा प्रजा दोनों को सपन्न बना देती है। राज्य की आर्थिक सपन्नता या उसका ऐश्वय लाभ ही प्रजा की अथवृद्धि कर सकता या प्रजा को राज्य सस्था म अनुरक्त बनाकर रख सकता है।

२० सम्पादितात्मा जितात्मा भवति।

शासकोचित सत्य व्यवहार करना सीख लन वाला ही जितेंद्रिय हो सकता है।

२१ विज्ञानेनात्मान सम्पादयेत।

राज्याभिलाषी लोग विज्ञान (व्यवहारकुशलता या कतव्या कतव्य का परिचय प्राप्त करके) अर्थात् सत्य को व्यवहार भूमि मे लाकर या अपने व्यवहार को परमाथ का रूप देकर अपने योग्य शासक बनाए।

२२ अविनीतस्वामिलाभादस्वामिलाभ श्रेयान।

अयोग्य को राजा बनाने से किसी को राजा न बनाने मे राष्ट्र का कल्याण है। अयोग्य एकाधिपत्य से राज्य को पचायती राज का रूप देना हितकर है।

२३ मानो प्रतिमानिनमात्मनि द्वितीय मन्त्रमुत्पादयेत।

समुन्नत चेता स्वाभिमानी राजा प्रबंध सबधी जटिल समस्याओ के उपस्थित होने पर अपने ही भीतर दूसरे प्रतिमानी विचारात्मक मन्त्र को उत्पन्न कर लिया करे और निगूढ कार्यों के विषय मे सबसे पहले उस मन्त्र के सहारे से सोचा करें।

२४ सहाय समदु खसुख ।

सुख दु ख दोनो मे अभिन्न हृदय साथी होकर रहने वाला मन्त्री आदि सहायक कहाता है।

२५ नक चक्र पारिभ्रमयति ।

जसे रथ का अकेला चक्र रथ को नही चला पाता इसी प्रकार राजा तथा मन्त्रिपरिषद् रूपी दो चक्रो से हीन एकतन्त्र राज्य पथ अकार्यकारी हो जाता है।

२६ नासहायस्य म त्रनिश्चय ।

मन्त्रिपरिषद की बौद्धिक सहायता से हीन अकेला राजा अपने अकेले सीमित अनुभवो के बल से राज जैसे सुदूरव्यापी जटिल कर्तव्यो के विषय मे उचित निर्णय नही कर पाता।

२७ श्रुतवन्तमुपधाशुद्ध मन्त्रिण कुर्वीत ।

तर्कशास्त्र, दडनीति, वार्ता आदि कयाओ मे पारगत यथा गुप्त रूप स ली हुई लोभ परीक्षाओ से शुद्ध प्रमाणित व्यक्ति को मन्त्री नियुक्त करे।

२८ मन्त्रमूला सर्वारम्भा ।

भविष्य म किए जाने वाले सब काम मन्त्र अर्थात् कार्यक्रम की पूर्वकालीन सुचिंता से ही सुसपन्न होते है।

२९ मन्त्ररक्षणे कार्यसिद्धिर्भवति ।

कार्य सबधी हिताहित चिता रूपी मन्त्र को गुप्त रखने कार्य सिद्ध हो पाता है।

३० म त्रविस्रावी कार्यं नाशयति ।

किसी भी प्रकार की असावधानता से मन्त्र की गोपनीयता को सुरक्षित न रख सकने वाला काय को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है ।

असावधानता, मद, स्वप्नविप्रलाप, विषयकामना, गर्व, गुप्तश्राता, मत्रकात म मूढ या अबोध समझकर न हटाया हुआ व्यक्ति एकात मे विचार से निर्णीत गुप्त बात को बाहर फैला देता है । इन सबसे मत्र की रक्षा करनी चाहिए ।

३१ सर्वद्वारेभ्यो म त्रो रक्षितव्य ।

मत्र फूट निकलने के समस्त द्वारो को रोककर उसकी रक्षा की जानी चाहिए ।

३२ म त्रसम्पदा हि राज्य वद्धत ।

मत्र की पूर्ण सुरक्षा तया उसकी पूर्णागता अर्थात् निर्दोषता से ही राज्यश्री की वद्धि होती है ।

३३ श्रेष्ठतमा म त्रगुप्तिमाहु ।

राज्यधम के आचाय बृहस्पति, विशालाक्ष, बाहुदन्तीपुत्र, पिशुन, प्रभृति विद्वान् लोग म त्र गुप्ति की नीति को अन्य सब नीतियो का सिरमौर बता गए ह ।

कतव्य मे शक्ति सचार करने वाली वस्तु मत्र ही है । राज्य की सुरक्षा मत्रबल से ही होती है । शत्रु को ज्ञात हो जाने से मत्र का व्यथ हो जाना ही मत्र का नाश है । मत्र का नाश ही शक्ति का भी नाश है । इस अथ मे मत्र रक्षा ही शक्ति रक्षा है । मत्र को सुरक्षित रखना ही शक्तिमान बनना है ।

३४ कार्यान्धस्य प्रदीपो म त्र ।

मानो अधेरे मे माग दिखाने वाले दीपक के समान कार्यान्ध (किंकतव्यविमूढ) को उसका कतव्य माग दिखा देता है ।

जैसे गृहस्वामी दीपक के बिना रात्रि के अधकार मे अपने ही सुपरिचित घर मे अधा बना रहता है इसी प्रकार मनुष्य मत्र (सुविचार) के बिना कर्तव्य पालन मे अधा बना रहता है।

३५ मन्त्रकाले न मत्सर कर्तव्य ।

मत्र ग्रहण करते समय मत्रदाता के छोटे-बडेपन पर ध्यान न देकर उसकी अभ्रातता पर ईर्ष्या न करके श्रद्धा के साथ मत्र ग्रहण करना चाहिए।

३६ त्रयाणामेकवाक्ये सम्प्रत्यय ।

विचारणीय प्रस्तुत कर्तव्य के विषय मे, ऊपर वर्णित तीनो मत्रणाकर्ताओ को एकमत हो जाना मत्र की श्रेष्ठता है। उससे कार्यसिद्धि सुनिश्चित हो जाती है।

३७ कार्याकार्यतत्त्वार्थदर्शिनो मन्त्रिण ।

कार्य अकार्य, दोनो की वास्तविकता को ठीक समझने वाले (मत्र की यथार्थता को स्वभाव से पहचान जाने वाले) अपने नियत वेतन से अधिक न चाहने वाले तथा मत्र के रहस्य को समझाने वाले मत्री होने चाहिए।

३८ षट्कर्णाद् भिद्यते मन्त्र ।

मत्र छ कानो मे पहुचने पर फूट निकलता है।

मत्र राजा तथा मुख्यमत्री के अतिरिक्त किसी भी तीसरे व्यक्ति के कानो तक पहुचने ही असार तथा हतवीर्य हो जाता है। तीन मत्रियो की मत्रणा का फूट जाना प्राय सुनिश्चित है। यही इस सूत्र का भाव है। इसके अनुसार जब मत्रणा को अतिम निश्चित रूप मिलना हो उस समय केवल दो उत्तरदायी मनुष्य ही उसे निश्चित अतिम रूप दे।

३९ मित्रसंग्रहणे बल संपद्यते ।

सच्चे मित्रो का संग्रह करने या सच्चा मित्र मिल जाने से मनुष्य को बल प्राप्त हो जाता है । सच्चे मित्र मिलने से मिलने वाला बल स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना तथा मित्र इन सातो या इनमे से कुछ रूपो मे प्राप्त होता है, ऐसा कामदक नीतिकार का वचन है । अमरसिंह ने भीति से कर देने वाली जनता को मिलाकर आठ प्रकार का बल कहा है । बल शरीर-सामर्थ्य का वाचक भी है । परन्तु यहा पर बल राजशक्ति से संबद्ध बल का पारिभाषिक नाम है ।

४० बलवानलब्धलाभे प्रयतते ।

सत्य या सच्चे मित्रो के बल से बलवान व्यक्ति अप्राप्त राज्यैश्वर्य पाने (अर्थात् उसे उत्पन्न करने तथा उसे निरतर बढाते रहने) के लिए सत्यानुमोदित प्रयत्न किया करे, या किया करता है ।

४१ अलब्धलाभो नालसस्य ।

अप्राप्त राज्यैश्वर्य को निरतर संग्रह करते चले जाना प्रयत्न-हीन, शक्तिहीन मद आलसी का काम नही है ।

मनुष्य मे सत्यनिष्ठा न होना ही आलस्य है । सत्यहीन व्यक्ति न करने योग्य सत्यानुमोदित प्रयत्नो मे प्रमाद करता है । अकर्तव्य अर्थात् न करने योग्य काम करना तथा कर्तव्यो अर्थात् करने योग्य कामो से बचे फिरना ही आलस्य है ।

४२ आलस्य लब्धमपि रक्षितु न शक्यते ।

अलस सत्यहीन प्रयत्नहीन व्यक्ति के कर्तव्य पालन मे प्रमादी होने से उसका राज्यैश्वर्य भी सुरक्षित नही रह पाता ।

दैव यदि आलसी को कुछ दे भी दे तो उससे उस दैवदत्त द्रव्य की रक्षा नही होती ।

४३ न चालसस्य रक्षित विवर्धते।

अलस मत्यहीन प्रयत्नहीन व्यक्ति का दैवद्वारा सचित राज्य स्वय कुछ काल तक सुरक्षित दीखने पर भी उसके वृद्धिमार्ग वृद्धि का प्राप्त नही होता ।

४४ न भृत्यान् प्रेषयति ।

अलस (मत्यहीन, प्रयत्नहीन, भोगासक्त) राजा या राज्याधिकारी राजकीय कर्मचारियो को काम या उचित सेवा मे लगाने तथा उनमे उचित सेवा लेने मे प्रमाद कर बैठने हैं ।

काम करने मे बचना जिनका स्वभाव हो जाता है, वह भृत्यो से काम लेने से भी स्वभाव से बचता है। यही उसके आलस्य का स्वरूप है । आलस्य न त्यागना, भृत्यो से यथोचित काम न लेना, राजा का राज्यव्यवस्था को सुव्यवस्थित कर देने के समान भयकर अपराध है ।

४५ अलब्धलाभादिचतुष्टय राज्यतन्त्रम ।

१ अलब्ध का लाभ २ लब्ध की रक्षा ३ रक्षित का वर्द्धन तथा ४ रक्षित का राजकर्मचारियो की उचित नियुक्ति से उचित कार्यों मे विनियोग या व्यय, ये राज्य-व्यवस्था के चार आधार हैं । ये चारो बातें मिलकर राज्य तन्त्र कहाने लगती हैं ।

४६ राज्यतन्त्रायत्त नीतिशास्त्रम ।

समाज मे प्रचलित या व्यवहृत नीतिशास्त्र, राज्यव्यवस्था की नीति के ही अधीन होता है ।

४७ राज्यतन्त्रेष्वायत्तो तन्त्रावापो ।

तन्त्र अर्थात् स्वराष्ट्र सबधी तथा आवाप अर्थात परराष्ट्र सबधी कर्तव्य अपनी राष्ट्र व्यवस्था के ही अग होने हैं ।

स्वराष्ट्र सबधी तथा परराष्ट्र से व्यवहार विनिमय सबधी दोनो प्रकार के कर्तव्य राज्य तन्त्र मे सम्मिलित होते हैं । अर्थात्

उसके भले बुरे के अनुसार भले बुरे होते हैं। परराष्ट्र चिंता के बिना राज्यतंत्र अधूरा रहता है। तंत्र अर्थात स्वराष्ट्र अर्थात अपनी प्रजा के जीवन साधनों की रक्षा तथा आवाप नाम से प्रसिद्ध परराष्ट्र चिंता या उससे व्यवहार ये दोनों बातें राज्य व्यवस्था की इतिकर्तव्यता में सम्मिलित हैं।

४८ आवापो मण्डलनिविष्ट ।

आवाप अर्थात् परराष्ट्र कर्तव्य मंडल अर्थात् पड़ोसी राष्ट्र से संबंध रखता है।

४९ संधिविग्रहयोर्निमण्डल ।

राज्य संपृक्त वे पड़ोसी राज्य मंडल कहाते हैं जिनके साथ संधि और विग्रह होते हैं।

५० हेतुत शत्रुमित्रे भविष्यत ।

शत्रु मित्र अकारण न होकर कारणवश हुआ करते हैं।

५१ नीतिशास्त्रानुगो राजा ।

नीति शास्त्र का अनुगामी होना राजा की योग्यता है।

विवरण--हेतुशास्त्र, दंडनीति, तथा अर्थशास्त्र नीति शब्द से कहे जाते हैं। शासन व्यवस्था से संबंध रखने वाले को इन सब राज्य शास्त्रों का सूक्ष्म ज्ञान होना चाहिए। यदि राज्याधिकारी लोग राज शास्त्र से अपरिचित रहकर तथा अपने कृत्यों पर कोई सामाजिक नियंत्रण न रखकर स्वेच्छाचारिता से राज करेंगे तो प्रबल अनिष्ट उठ खड़े होने सुनिश्चित है। राजा को नीतिप्रोक्त नियमों के अनुसार ही आत्मरक्षा तथा प्रजा पालन करना चाहिए। मनु के शब्दों में "बहवोऽविनयनष्टा राजान" वेन आदि बहुत से राजा अविनय या दुर्नीति से विनाश पा चुके हैं।

५२ अनंतरप्रकृति शत्रु ।

स्वदेश मे अव्यवहित देश के राजा स्वभाव से शत्रु होते है।

विवरण—जिनसे हर घडी का सीमा सघप आदि कलह होने की मभावना वनी रहती है वे परस्पर शत्रु वन जाते हैं। राज्याधिकारी लोग निकटवर्ती राज्यो से सदा सतक रह और उनकी स्वविरोधी गतिविधि देखते रह।

५३ हीयमान सधि कुर्वीत।

निवर्ल नीतिमान राजा का तत्कालिक कल्याण इसी मे है कि वह अधिक शक्तिशाली अन्यायी सशक्त राज्य के साथ सधि की नीति को अपनाकर आत्मरक्षा करे और उपस्थित सग्राम को टाल दे।

५४ तेजो हि सन्धानहेतुस्तदर्थानाम।

सधानार्थी दो मे से दोनो की तेजस्विता प्रभावशालिता तथा प्रताप ही सच्चा सधि का कारण होता है।

५५ नातप्तलोहो लोहेन स धीयते।

जस विना तपे लोहे की विना तप लोहे से सधि नही होती इसी प्रकार दोनो पक्षो मे तेजस्विता न हो तो सधि नही होती।

५६ सन्धायकतो वा।

विजिगीपु राजा सन्धि या विग्रह प्रत्येक अवस्था मे शत्रु के प्रयत्नो पर सुतीक्ष्ण दृप्टि रखता रहे।

५७ अरिप्रयत्नमभित समीक्षेत।

शत्रुओ के प्रयत्नो, चेप्टाओ, उद्यमो, राज्यलाभो, परराष्ट्रो से सधियो आदि को अपने गुप्तचरो के द्वारा ठीक ठीक जाने और आत्मरक्षा मे पूरी-पूरी सावधानी वरते।

५८ आमपात्रमामेन सह विनश्यति।

जैसे, कच्चा पात्र कच्चे पात्र से टक्कर लेने लगे तो दोनो

ही टूट जाते हैं, इसी प्रकार समान शक्तिवालो का युद्ध दोनो ही का विनाशक होता है ।

५६ बलवान हीनेन कवगहीयात ।

बली राजा शत्रु को हीन पाकर ही उससे युद्ध ठाने ।

६० न ज्यायसा समेन वा ।

अधिक भौतिक बल वाले या समान बल वाले से भी विग्रह न छेडे ।

६१ गजपादविग्रहमिव बलवद्विग्रह ।

बलवान से युद्ध करना युद्ध मे गज सेना से निश्चित रूप म हार जाने वाली पदाति सेना क युद्ध जैसा निबल का ही विध्वसक होता है ।

६२ शक्तिहीनो बलवतमाश्रयेत ।

शक्ति स्थापना का इच्छुक राजा किसी धार्मिक शक्तिशाली राजा को मित्र बना ले और उससे अपनी स्वतत्रता को सुरक्षित करे ।

६३ दुबलाश्रयो दु खमावहति ।

दुबल (अपनी शक्ति मे विश्वास न रखने वाले, स्वतन्त्रता या अशाति दमन के आदश को न अपनाने वाले) कापुरुष के साथ सम्मिलित होना दु ख (विनाश) का कारण बन जाता है ।

६४ अग्निवद्राजानमाश्रयेत ।

किसी राजा से आश्रय का सबध जोडना आवश्यक हो जाने पर भी उसकी ओर से अग्नि के सबध क समान, उसे अपनी हानि न करने देने के सबध मे पूरी तरह सावधान रहकर व्यवहार करे ।

६५ राज्ञ प्रतिकूल नाचरेत ।

राजद्रोह न करे ।

राजा के प्रतिकूल आचरण न करे। राष्ट्र की सम्मति से सिंहासनारूढ राजा का द्रोह राष्ट्र का ही द्रोह है ।

६६ उद्धतवेषधरो न भवेत्।

दृष्टिकटु (द्रष्टा के मन मे तिरस्कार बुद्धि उत्पन्न करने वाली) रुचिविगर्हित असाधारण पोशाक न पहने।

६७ न देवचरित चरेत ।

मनुष्य राजचरित्र का अनुकरण न करे ।

मनुष्य धनमद मे आकर मुकुट, छत्र, चामर, ध्वज, विशेष वाहन आदि राजचिन्हो का उपयोग न करे। राजा के ऐश्वर्य से प्रतिद्वंद्विता करने वाले प्रदर्शन न करे।

६८ नास्ति कार्यं द्यूतप्रवृत्तस्य ।

द्यूतासक्त लोग कर्तव्य का आह्वान आने पर धैर्यच्युत हो जाते हैं। ऐसी कर्तव्य दोषिणी द्यूतासक्ति राजा का राष्ट्रघाती अपराध है।

६९ इन्द्रियवशवर्ती चतुरंगवानपि विनश्यति।

इन्द्रियो का आज्ञाकारी असयतेंद्रिय राजा समस्त प्रकार की सेनाओ से सुसज्जित होने पर भी नष्ट हो जाता है।

७० न व्यसनपरस्य कार्यावाप्ति ।

व्यसनासक्त से सफल कर्म नही हो पाता।

विवरण—व्यसनासक्त का कर्म फलदायी नहीं होता—क्योंकि व्यसनासक्त का कर्म उत्साह, दृढता, सकल्प तथा आत्म-विश्वास से हीन होता है इसलिए उसके किए कर्म निष्प्राण होते हैं। उनका मन व्यसनासक्त होने से सब समय कर्तव्यबुद्धि से भ्रष्ट बनकर रहता है। राजा के राजकार्यों मे निष्ठा तब ही हो सकती है जब वह प्रजारजन को अपनी तपश्चर्या के रूप मे

कर खेलने का अवसर मिल जाएगा।

७८ अयतोषिण श्री परित्यजति।

राज्यलक्ष्मी अपर्याप्त राजकोप मे सतुष्ट हो जाने वाले, उसकी वृद्धि मे उदासीन उपेक्षापरायण नैष्कर्म्यावलवी राजा को त्याग देती है।

विवरण—राजकोप के असली स्वामी अगणित प्रजा का प्रतिनिधित्व करने वाले राजा के लिए अपने को राजकोप का स्वामी समझना तथा समझकर उसे पर्याप्त मान बठना भ्रांति है।

७९ दण्डाभावे मन्त्रिवर्गाभाव।

राज्य मे दडनीति के उपेक्षित होने पर राजा सुमन्त्रियो से परित्यक्त हो (कुमन्त्रियो के वश आ) जाता है।

देश विदेश सबधी दडनीति के सदुपयोग के लिए सवश्रष्ठ विलक्षण मन्त्रियो की आवश्यक्ता होती है। दड की उपेक्षा करने वालो को सुमन्त्रियो के स्थान मे दुमन्त्रियो की भीड घेर लेती है। तब राजा की स्वेच्छाचारिता वढकर राज्य को निमूल कर डालती है।

८० दण्ड सम्पदा योजयति।

दड ही राजा या राज को समस्त सपत्तियो से युक्त बनाता है।

विवरण—दड न्याय का पर्यायवाची है। दड ही न्याय है। प्रजा दड से ही वश मे रहती है। प्रजा के राज्य सस्था के वश मे रहने से ही सपत्ति राजा के पास अहमहम की होड लगाकर आने लगती हैं। राज्य मे दड व्यवस्था न रहने से क्रय, विक्रय, खान, आकर, आयकर, तटकर, ऋणदान, न्याय अन्याय, घट्ट, हाट आदि आय के समस्त मार्ग रुक जाते और वडे लोग छोटो

को लूटकर खाने लगते हैं। तब देश मे उपद्रव खडे हो जाते हैं। यही राज्य नाश या सपत्तिनाश की स्थिति बन जाती है। उचित दड व्यवस्था ही राष्ट्र को विनाश से बचाती और राज्य तथा राष्ट्र दोनो को सपन्न बनाए रखती है।

८१ दण्डनीतिमधितिष्ठन प्रजा सरक्षति।

राजा दडनीति का अधिष्ठाता रहकर ही प्रजा का सरक्षण करने म समथ होता है।

८२ न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति।

अपराधशील लोग निग्रह, ताडन, बध तथा अर्थ दड के भय मे विधान विरोधी नीतिहीन कार्यो से निवृत्त रहने लगते है।

पापशीलो का दड भय से पाप मे निवत्त रहना ही धम का राज कहलाता है। क्योकि धम ही धम, अथ और काम की रक्षा करता है इसलिए धम ही त्रिवग कहलाता है।

८३ दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम।

दडनीति को ठीक रखने पर ही आत्मरक्षा हो सकती है।

८४ आत्मनि रक्षिते सव रक्षित भवति।

राजा आत्मरक्षा करके ही समस्त राष्ट्र की रक्षा कर सकता है।

८५ आत्मायत्तौ वृद्धिविनाशौ।

मनुष्य को वृद्धि और विनाश अपने ही अधीन होते है।

८६ दण्डो हि विज्ञाने प्रणीयते।

दड का प्रयोग समझकर किया जाना चाहिए।

८७ दुबलोऽपि राजा नावमन्तव्य।

राजा को दुबल साधारण मानवमात्र मानकर उसकी अवज्ञा न करे।

८८ नास्त्यग्नेर्दौबल्यम ।

जैसे आग कभी दुर्बल नहीं होती, जैसे उसका क्षुद्र भी विस्फुल्लिग ईंधन के सयोग से महाग्नि बनकर विशाल वनो का फक डालन की सामथ्य रखता है, इसी प्रकार जिन लोगों म राज्यश्री प्रकट होती है वे क्षुद्रशक्ति वाले दीखने पर भी अपनी अतर्निहित मप्रथनात्मक शक्तियो मे जनता के सहयोग से अनक साधन पाकर प्रबल होकर अवमन्ता के लिए भयकर बन जाते है।

८६ दण्डे प्रतीयते वृत्ति ।

राजा की वृत्ति (सपूण श.सकोय योग्यता या विशेषता) उसकी दडनीति (प्रजापालन की विद्या या कला) से प्रकट होती है।

६० वत्तिमूलमथलाभ ।

राज्यश्री की प्राप्ति राजा के चरित्र पर निभर होती है।

६१ अथमूलौ धर्मकामौ ।

ऐहिक कतव्यो के पालन के माथ मानमिक उत्कप रूप धम का अनुष्ठान, तथा राष्ट्र की कामनाओ (अभावो या आवश्यक ताओ) की पूर्ति, राज्यैश्वर्य की स्थिरता पर ही निभर रहा करती है।

६२ अथमूल कायम।

अथ कार्यो का मूल होता है।

राज्यश्री ही राजशक्ति की कमण्यता की सरक्षिका होती है। लौकिक काम भी साक्षात् या परपरा या धनधान्यादि से ही निष्पन्न होते ह। जमे पवत से नदिया निकलकर बहने लगती है, इसी प्रकार प्रवृद्ध अर्थो से समस्त काम होन लगते हैं।

६३ यदल्पप्रयत्नात कायसिद्धिभवति ।

राज्यश्री पाने पर काय अल्प प्रयत्न से सिद्ध हो जाते हैं।

९४ उपायपूर्वं न दुष्कर स्यात् ।

काय उपायपूवक करने से दुष्कर नही रहता ।

९५ अनुपायपूव कार्यं कतमपि विनश्यति ।

पहले उपाय स्थिर किए बिना प्रारभ किए हुए कार्य नष्ट हो जाते हैं ।

९६ कार्यार्थिनामुपाय एव सहाय ।

उपाय ही कार्यार्थियो का सच्चा सहायक होता है।

९७ काय पुरुपकारेण लक्ष्य सम्पद्यते ।

काय पुरपकार मे आ जाने (कर्तव्य रूप मे वर्गीकृत हो चुकने) के पश्चात् लक्ष्य वन जाता (फल का स्थान लेकर फल को *गौण पक्ष मे डाल देता या लक्ष्य मुख्य फल वन जाता*) है।

९८ पुरुपकारमनुवतते दवम ।

देव पुरुपाथ के पीछे चलता है ।

९९ असमाहितस्य वृतिन विद्यते ।

अव्यवस्थित चित्त वाले पुरुप के पास वृत्ति (सद्व्यवहार कराने वाली भावना) नही रहती ।

१०० पूव निश्चित्य पश्चात कायमारभेत ।

कार्यारभ करने से पहले उसकी अनिवाय कतव्यता, उसके फलाफल, उसकी नीति तथा उपाय के सबध मे अभ्रात होकर पीछे से काम मे हाथ डालना चाहिए ।

१०१ कार्यान्तरे दीघसूत्रता न कतव्या ।

कम के मध्य मे कर्तव्यभ्रष्टता-रूपी या अतिविलबकारिता रूपी दीर्घसूत्रता नही करनी चाहिए ।

१०२ दुरनुबन्ध कार्य नारभेत ।

मनुष्य निश्चित शुभ परिणाम न रखने वाले कार्यों म हाथ न डाले ।

१०३ न चलचित्तस्य कार्यावाप्ति ।

चलायमान चित्त वाले व्यक्ति के काम पूरे नही हुआ करते।

१०४ हस्तगतावमाननात कार्यव्यतिक्रमो भवति ।

हाथ के साधनो का सदुपयोग न करने से कार्य का नाश हो जाता है ।

१०५ दोषवर्जितानि कार्याणि दुलभानि ।

ससार मे निर्दोष कार्य विरल होते हैं ।

१०६ दैवायत्त न शोचेत ।

मनुष्य दैवाधीन दुघटनाओ पर व्यर्थ चिताग्रस्त न हुआ करें ।

१०७ कालवित कार्य साधयेत ।

अनुकूल समय (अनुकूल परिस्थिति) को पहचानने वाला अपना काम अनायास बना लेता है ।

देशकाल तथात्मान द्रव्य द्रव्यप्रयोजनम ।
उपपत्तिमवस्था च ज्ञात्वा कार्य समारभेत ॥

मनुष्य देशकाल, आत्मशक्ति द्रव्य, तथा उसका उपयोग, उपाय और अवस्था को जानकर कर्म करे—

क काल कानि मित्राणि को देश को व्ययागमौ ।
इति सचिन्त्य कर्माणि प्राज्ञ कुर्वीत वा न वा ॥

बुद्धिमान पुरुष क्या समय है ? कितने सहायक है ? क्या परिस्थिति है ? आय व्यय ,कितना है ? ये सब बात सोचकर अपनी शक्ति मे समझे तो करे, न समझे तो न करे ।

काम का भी एक समय होता है। जैसे प्रत्येक मिट्टी के घट नही बनते इसी प्रकार, प्रत्येक समय प्रत्येक काम नही होते। कार्योपयोगी समय आ जाने पर ही कार्य होता है। वह कार्य के उचित समय को पहचानने से ही सिद्ध होता है। कार्य का समय बीत जाने से करना निष्फल हो जाता है। कार्य सिद्धि मे कार्य के उचित समय को पहचानने का बहुत बडा महत्त्व है।

१०८ कालातिक्रमात काल एव फल पिबति।

कतव्य का क ल टल जाने से काल ही उसकी सफलता को चाट जाता है।

१०९ क्षण प्रति कालविक्षेप न कुर्यात सवकत्येप।

मनुष्य निश्चित कर्तव्य मे क्षणमात्र का भी विलब न करे।

११० देशकुलविभागी ज्ञात्वा कायमारभेत्।

मनुष्य परिस्थिति तथा सफलता की सभावना दोनो को पूण रूप से समझकर काम करे।

१११ दवहीन कार्य सुसाध्यमपि दु साध्य भवति।

दैव की प्रतिकूलता होने पर सुखसाध्य कतव्य भी दु साध्य दीखने लगते है।

११२ नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत।

नीतिज्ञ अर्थात् व्यवहारकुशल मनुष्य परिस्थिति और अवसर का पूण परिचय पाकर काम करे।

११३ परीक्ष्यकारिणि श्री स्थिरा तिष्ठति।

सुअवसर पहचानकर काम करने वाले के पास श्री नियम से रहती है।

११४ अज्ञानिना कृतमपि न बहु मन्तव्यम।

अज्ञानी के कर्म की सफलता को सफलता न मानकर उसे

आकस्मिक घटना मानकर महत्त्व नही देना चाहिए।

११५ दु साध्यमपि सुसाध्य करोति उपायज्ञ ।

उपायज्ञ अर्थात कर्म के अव्यर्थ साधनो को पहचानने वाला बुद्धिमान व्यक्ति कठिन समझे हुए कामो को भी सुकर बना लेता है।

११६ यो यस्मिन कर्मणि कुशल त तस्मिन्नेव योजयेत ।

जो जिस काम को करने मे कुशल हो उसे उसी प्रकार के कम का भार सौपना चाहिए।

११७ सर्वाश्च सपद सर्वोपायेन परिग्रहेत ।

राजा साम, दाम आदि समस्त बुद्धिकौशलो से अपने तथा प्रजा के पास सब प्रकार की मानवोचित सपत्तियो के सग्रह करने मे प्रयत्नशील रहे जिससे समय पडने पर अपने देश को उत्तमोत्तम सेवा कर सके।

११८ भाग्यव तमपरीक्ष्यकारिण श्री परित्यजति।

श्री अर्थात् सफलता काय का सुअवसर न पहचानने वाले अपरीक्ष्यकारी भाग्यवान को छोडकर चली जाती है।

११९ ज्ञानानुमानैश्च परीक्षा कर्तव्या।

अपनी ईक्षण शक्ति तथा विचार शक्ति दानो के सहारे से परिणाम के कारणो का ठीक ठीक पता चलाकर किस कारण से यह काम इस प्रकार होना है, अपना कतव्य स्थिर करे।

१२० यादृच्छिकत्वात कृमिरपि रूपान्तराणि करोति।

जैसे घुन का कीडा भी पदार्थों के आकार आकस्मिक रूप से अबुद्धिपूर्वक बना देता है, जैसे उसके बनाए आकारो से उसकी निर्माण कुशलता प्रमाणित नही होती, इसी प्रकार स्वेच्छाचार, अविवेक और अविमृश्यकारिता से कभी कोई काम सयोगवश

बन भी जाए तो भी उस अविमृश्यकारी कर्ता को उस काम का श्रेय नही दिया जा सकता।

१२१ सिद्धस्यैव कायस्य प्रकाशन कत यम्।

कम को किए जा चुकने के अनतर ही उसे लोगो को जानने देना चाहिए।

१२२ ज्ञानवतामपि दवमानुपदोषात कार्याणि दुष्यन्ति।

कभी कभी बहुत से काम भवितव्यता की प्रतिकूलता से या किसी मानवीय त्रुटि से दूषित हो जाने के कारण अधूरे रह जाते हैं।

१२३ दैव नातिक्रमणा प्रतिपद्धव्यम।

भूकप, वज्रपात, जलप्रलय, झझावात, राष्ट्रविप्लव तथा आततायी के आक्रमण आदि दैवी विपत्तियो के दिनो मे बुद्धि को स्थिर और शात रखकर उनका निवारण करना चाहिए।

१२४ मानुषीं कायविपत्ति कौशलेन विनिवारयेत।

काय बिगाडने वाले मानवीय विघ्नो को अपनी सतकता तथा बुद्धिकौशल से परास्त करे।

१२५ कायविपत्तौ दोषान वर्णयति बालिशा।

मूढ लोग काय मे असफल हो चुकने पर या तो अपनी उन त्रुटियो पर पश्चात्ताप करते हैं, जिन्हे पहले ही हटाकर फिर काम मे हाथ लगाना चाहिए था या आपस मे एक दूसरे पर काम बिगाडने का दोष लगाकर कर्त्ता को लाछित तथा स्वय निर्दोष समीक्षक बनना चाहा करते है।

१२६ प्रत्यक्षपरोक्षानुमानै कार्याणि परीक्षेत।

उपस्थित अनुपस्थित साधनो तथा अनुमानो द्वारा विचार करके कतव्यो का निश्चय करे।

१२७ य काय न पश्यति सोऽन्ध ।

जिसे अपनी विवेक की आख से अपना सामयिक कर्तव्य पहचानना नही आता, वह आखो के रहते हुए भी अधा है ।

१२८ कायबाह्यो न पोषयत्याश्रितान ।

कतव्य से भागते फिरने वाला आश्रितो का भरण पोषण नही कर पाता ।

१२९ न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धि ।

पहले से ही सफलता का निश्चय कर बैठने वालो के काम सिद्ध नही होते या वे कोई नया काम प्रारम्भ ही नहीं किया करते ।

१३० अप्रयत्नात् कार्यविपत्तिर्भवति ।

काय के लिए अपेक्षित सपूर्ण प्रयत्न न करने से काय का नाश हो जाता है ।

१३१ दुग्धपानार्थी वत्सो मातुरूध प्रतिहन्ति ।

दुग्धपानार्थी गोवत्स को माता के स्तनो पर आघात करना पडता है ।

१३२ कार्यार्थिना दाक्षिण्य न कर्तव्यम ।

कार्यार्थी राज्याधिकारियो को शत्रुओ की शका से भरे हुए देश मे भावुकता मे वहकर उदारता, सरलता, भोलापन और मिथ्या सचाई न वरतनी चाहिए ।

१३३ अपरीक्ष्यकारिण श्री परित्यजति ।

श्री अर्थात् सफलता विना विचार काम करने वाले को त्याग देती है ।

१३४ परीक्ष्य तार्या विपत्ति ।

विपत्ति (सफलता के माग के विघ्न) को विचार से हटाना

चाहिए।

१३५ स्वशक्ति ज्ञात्वा कार्यमारभेत ।

अपनी शक्ति के विषय मे पूरी तथा सच्ची जानकारी पाकर, उसके विषय मे किसी प्रकार के मिथ्या विश्वास मे न रहकर काम प्रारभ करे।

१३६ स्वजन तर्पयित्वा य शेषभोजी सोमृतभोजी ।

अपने उपार्जन मे से स्वजनो, बधुओ, अतिथियो, पोष्यो, दीन दुखियो तथा समाजकल्याणकारी सस्थाओ का भरणपोषण करने के पश्चात् शेष धन से जीवन यात्रा करने वाले लोग अन्न-भोजी होने पर भी अमृतभोजी होते है।

१३७ सदानुष्ठानदायमुखानि वर्धन्ते ।

राष्ट्र मे भूमि, धन, व्यापार, शिल्प आदि समस्त प्रकार के राष्ट्रहितकारी कर्तव्यो के सुसपन्न होने पर ही राज्य की आय के द्वार बढते है।

१३८ नास्ति भीरो कार्यचिन्ता ।

भीरु कापुरुष अपने मन मे वीरोचित कर्तव्य की चिंता को स्थान नही देता। वह कर्तव्यहीन रहने का कोई न कोई बहाना बना लेता है।

१३९ स्वामिन शील ज्ञात्वा कार्यार्थी कार्य साध्यति ।

कार्यो मे नियुक्त लोग अपने आश्रयदाता स्वामी की रुचि को पहचानकर तदनुसार कार्य किया या कराया करते है।

१४० तीक्ष्णदण्ड सर्वैरुद्वेजनीयो भवति ।

लघु अपराध मे कठोर दड देने वाला शासक सबकी घृणा का पात्र तथा अपने प्रभाव क्षेत्र मे उपद्रव खडा होने का कारण बन जाता है।

१४१ धेनो शीलज्ञ क्षीर भुङ्क्ते।

जैसे दुग्धार्थी धेनु के प्रभाव को जानकर जिस रीति से सभव होता है उसी रीति म उससे दुग्ध प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार राजसेवक राजा की रुचि के अनुकूल राजसेवा करके अपना राष्ट्रसेवा नामक उद्देश्य पूरा किया करते हैं।

१४२ क्षुद्रे गुह्यप्रकाशन श्रात्मवान्न कुर्वीत (कुर्यात)

मनस्वी धीमान् मनुष्य मदमति, अनीतिज्ञ, नीच, चचल बुद्धि, अनुचर को अपनी गुह्य बात न बता दे।

१४३ आश्रितैरप्यवमन्यते मृदुस्वभाव।

मृदु स्वभाव मनुष्य अपने आश्रितो से भी अनादर पाता है।

१४४ अल्पसार श्रुतवन्तमपि न बहु मन्यते लोक।

लोक अगभीर मनुष्य के विद्वान होने पर भी उसे प्रतिष्ठा की दृष्टि मे नही देखता।

१४५ अतिभार पुरुषमवसादयति।

शक्ति से अधिक कर्म का भार मनुष्य को हतोत्साह तथा क्लात करके कम को अनिवाय रूप से निष्फल बना डालता है या नष्ट कर देता है।

१४६ य ससदि परदोष शसति स स्वदोषबहुत्व प्रख्यापयति।

जो राजसभा मे दोषालोकन का प्रसग होने पर भी आलोच्य प्रसग से वाहर जाकर अपने व्यक्तिगत शत्रु की दोषालोचना करने लगता है वह स्वय अपने का अपराधी घोषित कर देता है।

१४७ आत्मानमेव नाशयति अनात्मवतां कोप।

असस्कृत मन वाले अविवेकी लोगो का क्रोध उन्ही के आत्मकल्याण का विनाशक होता है।

१४८ नास्त्यप्राप्य सत्यवनाम ।

सत्य धन से सपन्न व्यक्तियो के लिए कोई भी प्राप्तव्य वस्तु अप्राप्य नही रह जाती ।

१४६ साध्येन न कायसिद्धिर्भवति ।

साध्य (केवल भौतिक शक्ति पर निर्भर हो जाने) मात्र से काम नही बनता ।

१५० व्यसनार्तो विस्मरत्यप्रवेशेन ।

व्यमनामक्त मनुष्य ध्यानाभाव से कतव्यविमूढ हो जाता है ।

१५१ नास्त्यनन्तराय कालविक्षेपे ।

काल के दुरुपयोग मे निर्विघ्नता नही है । दीघसूत्रता विघ्न सकुल है ।

१५२ असशय विनाशात सशयविनाश श्रेयान ।

सग्रामविमुख निश्चित मौत से साग्रामिक अनिश्चित मौत मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है ।

१५३ ऋजुस्वभावो जनेषु दुलभ ।

सत्पुरुष के निष्कपट निर्व्याज, सभ्य वर्ताव करने वाला, कतव्यपालनमात्र पर दृष्टि रखने वाला ऋजु व्यक्ति मनुष्यो मे दुर्लभ होता है ।

१५४ तद्विपरीतोनथसेवी ।

धर्मार्थविरोधी काम से विपरीत कामना करने वाला मानव, अपने जीवन को व्यथ करता, समाज मे अशाति उत्पन्न करता तथा समाज की शाति की शृखला को नष्ट कर देता है ।

१५५ यो धर्मार्थौ न विवधयति स काम ।

जो धम, अथ दोनो की वृद्धि न करे, वह काम है ।

१५६ नार्यागतोऽयवद्विपरीतोऽनयनाय ।

अनाय (अज्ञानी) समाज मे प्रचलित परपरागत व्यय आच रण ही मानवजीवन नाशक अनर्थ हैं।

१५७ दान धम ।

दान (याग्य पात्र को सहायता करना) धर्म (मनुष्य का सर्वहितकारी कर्तव्य) है।

१५८ अपरधनानि निक्षेप्तु केवल स्वायम् ।

दूसरे के धन को धरोहर रूप मे रखने वाला यदि धराहर रखने के साथ स्वार्थभेद और दूसरो के प्रति अपना कोई उत्तर दायित्व नही समझता होगा वह निश्चित रूप से प्रत्येक समय अपना ही स्वाथ खोजता होगा।

१५६ नायाग्रतोयवद्विपरीतोनयभाव ।

अनाय(अज्ञानी) समाज मे प्रचलित परपरा व्यय आचरण ही मानवजीवन नाशक अनथ है।

१६० अवमानेनागतमैश्वयमवमन्यत साधु ।

साधु अर्थात् सत्यनिष्ठ कतव्यपालक ऋजु व्यक्ति वह है, जो अपनी साधुता पर कलक लगा देने वाले उत्कोच आदि गर्हित ढगो स आने वाले ऐश्वय को तृण के समान अस्वीकार कर देता है।

१६१ बहूनपि गुणानेको दोपो ग्रसते ।

मनुष्य का एक भी दोप बहुत से गुणा को दोप बना डालता है।

१६२ महात्मना परेण साहस न कतव्यम ।

सत्यनिष्ठ वर्धिष्णु महात्मा लोग दुष्कर दीखन वाली व्यवस्था दूसरे साथियो के भरोसे न करके अपने ही भरासे करें।

१६३ कदाचिदपि चरित्र न लघयेत।

मनुष्य काम, क्रोध आदि विकारो की अधीनता स्वीकार करके अपने चरित्र (स्वभाव स्वधर्म-मानवीय कर्तव्य) के विपरीत कोई ऐसा काम न कर बैठे कि वह जीवनभर हृदय मे चुभने वाला काटा न बन जाए।

१६४ क्षुधार्तो न तृण चरति सिंह।

जैसे सिंह बुभुक्षा से व्याकुल होने पर भी अपना मासाशी स्वभाव त्यागकर तृण भोजी नही बन जाता उसी प्रकार जीवन मे चरित्र की बहुमूल्यता को समझने वाले लोग मनुष्य को हिलो डालने वाली उत्तेजना और विपत्ति के अवसरो पर भी अपने सत्य को नही त्यागते और सच्चरित्रता तथा तेजस्विता को तिलाजलि नही दे बैठते।

१६५ प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्य।

मनुष्य अपने प्राणो को सकट मे डालकर भी ऋजुओ के साथ ऋजुतारूपी अपनी विश्वासपात्रता की तथा राष्ट्र के साथ अपनी नागरिकतारूपी विश्वासपात्रता की रक्षा को अपने जीवन मे मुख्य स्थान देकर रखे।

१६६ पिशुन श्रोता पुत्रदारैरपि त्यज्यते।

सुनी हुई गुप्त बातो के आधार पर लोगो मे झगडे लगाने वाले विश्वासघाती को उसके पारिवारिक तक त्याग देते है।

१६७ बालादप्यर्थजात शृणुयात।

उपयोगी बातें नगण्य व्यक्तियो से भी सुन लेनी चाहिए।

१६८ सत्यमप्यश्रद्धेय न वदेत।

वान सत्य होने पर भी यदि किसी योग्य सत्यद्रोही श्रोता को अश्रद्धेय, कर्णकटु लगे तो उसमे मत कहो और सत्य का अपमान मत करवाओ।

१६९ नाल्पदोषाद् बहुगुणास्त्यज्यन्ते ।

किसी के साधारण दोष देखकर उसके महत्त्वपूर्ण गुणों का अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

१७० विपश्चित्स्वपि सुलभा दोषा ।

स्थूल दृष्टि से ज्ञानी के व्यवहारों में दोष निकालना सहज है ।

१७१ शत्रु जयति सुवृत्तता ।

सदाचार शत्रु पर विजय प्राप्त कराने का अमोघ साधन है ।

१७२ निकृतिप्रिया नीचा ।

नीच व्यक्ति सत्पुरुषों के साथ कपटाचरण करने वाला होता है ।

१७३ नीचस्य मतिर्न दातव्या ।

नीच, हीन, हठ, मानव को सदुपदेश देकर उसे धर्मबुद्धि बनाने का प्रयत्न न करो ।

१७४ तेषु विश्वासो न कर्तव्य ।

क्रूरों, शठों, वञ्चकों, नीचों का विश्वास न करना चाहिए ।

१७५ सुपूजितोपि दुर्जन पीडयत्येव ।

दुर्जन उदारता का व्यवहार पाकर भी अवसर पाते ही अनिष्ट करने से नहीं चूकता ।

१७६ चन्दनादीनपि दावाग्निर्दहत्येव ।

जैसे दावाग्नि अपने दाहकत्व स्वभाव से विवश होकर चदन की शीतलता तथा सुगन्ध का गुण ग्रहण न करके उसे भी भस्मीभूत कर डालती है, इसी प्रकार उपकृत भी शठ उपकार करने वाले का कृतज्ञ न होकर उसका भी अपकार ही करता है ।

१७७ कदापि पुरुष नावम येत ।

कभी किसी पुरुष का अपमान मत करो ।

१७८ क्षन्तव्यमिति पुरुष न बाधेत ।

क्षमा करना मानव धम है इस दृष्टि को लेकर क्षमायोग्य पात्रो को सन्ताप मत पहुचाओ ।

१७९ भर्त्राधिक रहस्युक्त ववतुमिच्छन्त्यबुद्धय ।

निर्बुद्धि लोग राजा के द्वारा एकात मे कहे हुए गभीर राजकीय रहस्यो को प्रकट कर देना चाहते हैं ।

१८० अनुरागस्तु फलेन सूच्यते ।

अनुराग मौखिक सहानुभूतियो से सूचित न होकर फलो से सूचित होता है ।

१८१ आज्ञाफलमश्वयम ।

ससार मे उसी की आज्ञा मानी जाती है जो अपने ऐश्वर्य को अपनी प्रबध शक्ति से सुरक्षित रखता है ।

१८२ दातव्यमपि बालिश क्लेशेन परिदास्यति ।

मूढ मानव दातव्य वस्तु को भी बाह्य प्रभाव से देता है ।

१८३ महदैश्वर्यं प्राप्याप्यधृतिमान् विनश्यति ।

अविवेकी लोग राज्यैश्वर्य पाकर भी नष्ट हो जाते ह ।

१८४ नास्त्यधतेरैहिकामुष्मिकम ।

अधीर का वतमान और भावी दोनो सुखहीन (दु खमय) हो जाते हैं । धीरज न होने से कम का सामर्थ्य नष्ट हो जाता है और फल अप्राप्त रह जाता है । सफलता पाने के लिए धीरता की परमावश्यकता है ।

१८५ न दुजनै सह ससग कतव्य ।

बुद्धिमान लोगो को दुष्ट (हीन, पोच तथा क्रूर) लोगो से

घनिष्ठता नहीं करनी चाहिए।

१८६ शौण्डहस्तगत पयोऽप्यवमन्येत ।

मद्यप के हाथ के दूध को भी मद्य के समान ही त्याज्य मानना चाहिए।

१८७ कार्यसंकटेष्वर्थव्यवसायिनी बुद्धि ।

कार्य सङ्कट में अर्थात (कर्तव्य में विघ्न उपस्थित होने पर) निश्चित सफलता देने वाला कर्तव्य का मार्ग सुझा देना बुद्धि का ही काम है।

१८८ मितभोजनं स्वास्थ्यम ।

परिमित भोजन स्वास्थ्यदायक होता है।

१८९ पथ्यमप्यपथ्याजीर्णे नाश्नीयात ।

अपथ्य के कारण अजीर्ण हो गया हो तो पथ्य को भी त्याग देना चाहिए।

१९० जीर्णभोजिनं व्याधिर्नोपसर्पति ।

व्याधि जीर्ण भोजी के पास नहीं फटकती।

१९१ रुग्णशरीरे वर्धमानं व्याधिं नोपेक्षेत ।

रुग्ण, वृद्ध, रोगजीर्ण निर्बल देह में बढ़ती व्याधि की उपेक्षा न करे।

१९२ अजीर्णे भोजनं दु खम।

अजीर्ण में भोजन ग्रहण करना पाकस्थली को अनिवार्य रूप से रोगाक्रान्त और दु खी बना डालता है।

१९३ शत्रोरपि विशिष्यते व्याधि ।

व्याधि शत्रु से भी अधिक हानिकारक होती है।

१९४ दानं निधानमनुगामि ।

दान अपनी धनशक्ति के अनुसार होना चाहिए।

१९५ पटुतरे तृष्णापरे सुलभमतिसन्धानम् ।

अनुचित चतुर लोभपरायण व्यक्ति मे अनुचित घनिष्ठता बढाने की प्रवृत्ति रहती है ।

१९६ तृष्णया मतिश्छाद्यते ।

लोभ मनुष्य की बुद्धि को ढक देता है ।

१९७ कार्यबहुत्वे बहुफलमायतिकं कुर्यात ।

मनुष्य एकसाथ अनेक कार्य उपस्थित होने पर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थायी परिणाम वाला कर्म कर्तव्य के रूप मे स्वीकार करे। उसे कर चुकने के पश्चात् लघु तथा अस्थायी महत्व रखने वाले काम करे ।

१९८ स्वयमेवापस्कन्नं कार्यं निरीक्षेत ।

स्वयं बिगडे या दूसरो के बिगाडे काम को अपनी ही आखो से देखे और उसे सुधारे ।

१९९ मूर्खेषु साहसं नियतम् ।

नृशंस आक्रमण, अभद्र व्यवहार अबुद्धिपूर्वकारिता या दुःसाहस मूर्खों का स्वभाव होता है ।

२०० मूर्खेषु विवादो न कर्तव्यः ।

हिताहित उचितानुचित विचार शून्य विवेकहीन मूर्खों के साथ वाग्युद्ध न करके उनके दुःसाहस को उचित व्यवहार से तत्क्षण दमन करना चाहिए ।

२०१ नास्ति रत्नमखण्डितम् ।

जैसे प्रत्येक रत्न मे मलिनता, वक्रता, विषमता आदि कोई-न-कोई त्रुटि निकाली जा सकती है, जैसे सर्वजात्युत्कृष्ट मणि भी सर्वथा निर्दोष नही होती इसी प्रकार विद्वानो की भी शारीरिक ऐंद्रिक भूलें पकडी जा सकती हैं ।

२०२ मर्यादातीत न कदाचिदपि विश्वसेत ।

सामाजिक नियमो के उल्लघक, विवेक का शासन न मानने वाले निमर्याद का कभी विश्वास न करो ।

२०३ अप्रिये कृत प्रियमपि द्वेष्य भवति ।

दुष्ट के साथ भलाइ करना भी दोष है अर्थात् दुष्ट उपकार को भी अपकार मानता है ।

२०४ नमन्त्यपि तुलाकोटि कूपोदकक्षय करोति ।

जैसे सिर झकाकर नम्रतापूवक कूप मे घुसने वाली ढीकली उसका पानी रिता देती है, इसी प्रकार स्वार्थी लोगो को दिखावटी शिष्टाचारयुक्त भाषण करता देखकर उन्हे लूटने के लिए आने वाले प्रच्छन्न लुटेरे मानकर उनके मायाजाल से बचना चाहिए ।

२०५ सतां मत नातिक्रामेत ।

अनुभवी सत्पुरुषो के सिद्धातो के विरुद्ध आचरण न करे ।

२०६ गुणवदाश्रयान्निर्गुणोपि गुणी भवति ।

निर्गुण दीखने वाला भी गुणवान के ससर्ग मे रहता रहता गुणी हो जाता है ।

२०७ क्षीराश्रित जल क्षीरमेव भवति ।

जैसे दुग्धाश्रित जल भी दुग्ध ही हो जाता है इसी प्रकार गुणी के हाथो मे आत्मसमपण का सबध जोडने वाला गुणप्रेमी व्यक्ति स्वय उस जैसा गुणी बन जाता है ।

२०८ मृत्पिण्डोऽपि पाटलिगन्धमुत्पादयति ।

जैसे गध ग्रहण मे समथ निर्गंध भी मृत्पिड सुगध पुष्प के सपर्क मे आकर उसका सुगध ग्रहण कर लेता है, इसी प्रकार स्वभाव से गुण ग्रहण मे समथ निर्गुण अज्ञ भी मानव-हृदय सद्गुण सपन्न विद्वान् व्यक्ति के सपर्क मे आकर उसके सद्गुणो

को ग्रहण कर लेता और ज्ञान संपन्न वन जाता है ।

२०६ रजत कनकसगात कनक भवति ।

जैसे चादी, सोने के साथ मिश्रित हो जाने से (वह मिश्रित धातु) साना ही वन जाती है । चादी नही रहती ।

२१० उपकतयपकर्तुं मिच्छत्यवधु ।

मद मति, क्रूर, अज्ञानी अपने बुद्धिकोप (हिताहित विवेक-हीनता) से हितकर्ता को भी हानि पहुचाकर अपना नीच स्वार्थ सिद्ध करने से विमुख नही होता ।

२११ न पापकर्मणामाक्रोशभयम ।

पापियो को निंदा का भय नही हुआ करता ।

२१२ उत्साहवता शत्रवोपि वशी भवन्ति ।

दुर्दात शत्रु भी उत्साह वालो के वश मे आ जाते है ।

२१३ विक्रमधना राजान ।

ज्ञानदीप्त तेजस्विता ही राजा का धन है ।

२१४ नास्त्यलसस्य हिकामुष्मिकम ।

कार्य मे अनुत्साही अकर्मण्य मदगति आलसी को वतमान तथा भविष्यकालीन सफलता नही मिलती ।

२१५ निरुत्साहाद्दैव पतति ।

उत्साह के विना निश्चित सफलताए भी हाथ से वाहर खडी रह जाती हैं ।

२१६ मात्स्यार्थीव (मत्स्यार्थिवत) जलमुपयुज्याय गह्णीयात ।

जैसे मत्स्यार्थी जल मे घुसने के सकट मे पडकर ही अपना मछलीरूपी स्वार्थ पाता है इसी प्रकार पुरुपार्थी मानव उठे, सकट मे कूदे, सफलतारूपी अपने दैव को विघ्नो से वचा-वचा कर सुरक्षित करता चले और अपना काम बना ले ।

२१७ अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्य ।

अपरीक्षित या अपात्र लोगो का विश्वास कभी नही करना चाहिए ।

२१८ विष विषमेव सर्वकालम ।

जैसे विष सदा विष ही रहता है, कभी अमृत नही होता जैसे विष कभी अपना स्वभाव नही बदलता इसी प्रकार अविश्वासी स्वभाव वाला मनुष्य कभी विश्वासयोग्य नही बना करता ।

२१९ अर्थसमादाने वैरिणा सग एव न कर्तव्य ।

कार्य सपादन मे शत्रुओ से किसी प्रकार सपर्क न करना चाहिए ।

२२० अर्थसिद्धौ वैरिण न विश्वसेत ।

उद्देश्य पूर्ति मे वैरी का विश्वास मत करो ।

२२१ अर्थाधीन एव नियतसबध ।

लोगो से सबन्ध उद्देश्य के अनुसार होता है ।

२२२ शत्रोरपि सुतस्सदा रक्षितव्य ।

शत्रु का भी पुत्र यदि मित्र हो तो, उसकी रक्षा करनी चाहिए ।

२२३ यावच्छत्रोश्छिद्र पश्यति तावद्धस्तेन वा स्कन्धेन वा वाह्य ।

शत्रु की जिस निर्बलता पर प्रहार करे उसे नष्ट करना हो उसका पता न चला लेने तक उसे कृत्रिम मान तथा कृत्रिम मित्रता के प्रदर्शनो से धोखे मे रखते रहो ।

२२४ शत्रु छिद्रे परिहरेत ।

विजिगीषु राजा शत्रु की छिद्रावस्था मे उसे अपनी सहायता से वचित कर दे ।

२२५ आत्मच्छिद्र न प्रकाशयेत ।

शत्रु को अपनी निर्बलता का पता न चलने देकर उसकी दृष्टि मे वलवान वनकर रहे ।

२२६ छिद्रप्रहारिणश्शत्रव ।

शत्रु प्रतिपक्षी की निबलता पर ही आक्रमण किया करते हैं।

२२७ हस्तगतमपि शत्रु न विश्वसेत ।

विजिगीषु राजा अपने वश मे आने के पश्चात् अपनी शत्रुता का मगोपन तथा मित्रत्व का प्रदशन करने वाले शत्रु का विश्वास न करे ।

२२८ स्वजनस्य दुवृ त्त निवारयेत ।

विजिगीषु राजा स्वपक्ष के लोगो के दुराचार या गर्हित आचरण को प्रवल उपायो से दूर करे ।

२२९ स्वजनावमानोऽपि मनस्विना दु खमावहति ।

दुश्चरित्रता के कारण हुआ स्वजनो का अपमान विचारशील व्यक्तियो के दु ख के कारण होता है ।

२३० एकाङ्गदोष पुरुषमवसादयति ।

जैसे किसी का एक रोगी अग उसके समस्त देह को अवसन्न तथा अनुपयोगी वना डालता है, जैसे वह एक दूषित अग समस्त देह के व्याधिग्रस्त होने का लक्षण होता है, इसी प्रकार का दुराचार, समस्त राज्यसस्था या सारे दल को हीनवल वना डालता है।

२३१ मूर्खेषु मूखवत कथयेत ।

मूर्खा मे सज्जनता का व्यवहार न करके उनके साथ उनकी समझ मे आने वाली दड की भाषा मे व्यवहार करना चहिए ।

२३२ आयसैरायस छेद्यम ।

जैसे लोहे को लोहे से ही काटा जाता है, इसी प्रकार पतित

हृदय वाले हठीले नीच मूर्ख को हितोपदेश देकर अनुकूल बनाने की भ्राति न करके उसे उसका जी तोड सकने वाले कठोर शारीरिक दडो से पराभूत करना चाहिए।

२३३ नास्त्यधमित सखा।

मूर्ख को वधु मिलना सभव नही है।

२३४ धर्मेण धायते लोक ।

लोक-विधारक सत्य रूपी मानव धम ही मानव समाज का सरक्षक है।

२३५ प्रेतमपि धर्माधर्मावुपगच्छत ।

देही के धर्माधम देह का अत हा जाने पर भी उसके साथ लगे रहते हैं।

२३६ दया धमस्य ज मभूमि ।

(परदु खकातरता या सहानुभूति रूपी) दया से धमनिष्ठा पैदा होती है।

२३७ धममूले सत्यदाने।

धम ही सत्य तथा दान दोनो का मूल (जनक) है।

२३८ धर्मेण जयति लोकान।

धम-रक्षा (सत्य रक्षा) मानव को विश्वविजेता बना देती है।

२३९ मृत्युरपि धर्मिष्ठ रक्षति।

सवसहारी मृत्यु भी धार्मिक को इस ससार से मिटा (भुला) नही पाती।

२४० धर्माद्विपरीत पाप यत्र प्रसज्यते तत्र धर्मावमतिमहति प्रसज्यते।

धम द्वेषी पाप जहा कही प्रबल हो जाता है या सिर उठा लेता है वहा धम का महा अपमान होने लगता है।

२४१ उपस्थित विनाशाना प्रकृत्याकारेण लक्ष्यते ।

विनाशोन्मुख असुरो का सत्यद्वेषी आकार (आचरण) उनके विनाश की सूचना दिया करता है ।

२४२ आत्मविनाश सूचयत्यधमबुद्धि ।

विनाशोन्मुख मानव की सत्यद्वेषिणी अधमबुद्धि (अधार्मिक कार्यो मे प्रवत्ति) उसके आत्मघात की सूचना देती है ।

२४३ पिशुनवादिनो रहस्यम ।

पिशुनवादो को बताई गुप्त बात गुप्त नही रह सकती ।

२४४ पररहस्य नव श्रोतव्यम् ।

दूसरो की गुप्त बात सुनने का अकारण आग्रह न होना चाहिए ।

२४५ वल्लभस्य कारकत्वधमयुक्तम ।

स्वामी के ऊपर मुह लगे अनुचरो का आधिपत्य अधमयुक्त (अधम प्रसारक) होता है ।

२४६ स्वजनेष्वतिक्रमो न कतव्य ।

अपने स्निेपियो की उपेक्षा न करनी चाहिए किंतु उनके साथ यथोचित वर्ताव करना चाहिए ।

२४७ मातापि दुष्टा त्याज्या ।

दुष्ट होने पर माता भी त्याज्य होती है । शत्रुता करने वाली माता से भी दूर रहना चाहिए, औरो का तो कहना ही क्या ?

२४८ स्वहस्तोपि विषदिग्धश्छेद्य ।

जैसे आत्मरक्षा के नाम पर विपाक्त स्वहस्त भी छेद्य हो जाता है इसी प्रकार विनाश करने पर उतर आए हुए प्रिय से भी प्रिय सबधी का भी त्याग अवश्य ही करके आत्मरक्षा करनी चाहिए ।

२४६ परोऽपि च हितो बन्धु ।

ससारी सबध न रखने वाला भी यदि कोई हितकारी स्थान अनुकूल व्यवहार करने वाला व्यक्ति सत्यनिष्ठ धार्मिक हो तो उसे बधु समझकर अपनाना चाहिए ।

२५० कक्षादप्योषध गृह्यते ।

जैसे व्याधिनाशक औषध अरण्य जैसे असबद्ध स्थान से लनी पडती है इसी प्रकार दर्पकारी व्यक्ति ससारी दृष्टि से हीन होन पर भी उपेक्षित तथा अवहेलित नही होना चाहिए ।

२५१ नास्ति चौरेषु विश्वास ।

चोरो का विश्वास कभी न करना चाहिए ।

२५२ अप्रतीकारेष्वनादरो न कर्तव्य ।

शत्रु को प्रतिकार मे उदासीन देखकर उसकी उपेक्षा न करनी चाहिए ।

२५३ व्यसन मनागपि बाधते ।

छोटा सा भी व्यसन (निर्बलता) मनुष्य के सर्वनाश का कारण बन जाता है ।

२५४ अमरवदर्थजातमर्जयेत ।

मनुष्य अपने को अमर मानकर जीवनपर्यंत जीवन सामग्रियो का अर्जन करता रहे ।

२५५ अर्थवान सर्वलोकस्य बहुमत ।

ऐश्वर्यसपन्न मानव अपनी अर्थशक्ति से सार्वजनिक सम्मान का भाजन हो जाता है ।

२५६ महेन्द्रमप्यर्थहीन न बहु मन्यते लोक ।

ससार अर्थहीन महेन्द्र का भी सम्मान नही करता ।

२५७ दारिद्र्य खलु पुरुषस्य जीवित मरणम ।

दरिद्रता जीवित मनुष्य को भी मृतवत् अर्थात् जीवन को

मरण के समान व्यर्थ वना देती है।

२५८ अदातारमप्ययर्तमर्थिनो न त्यजति।

धनार्थी लोग कृपण धनवान को भी अपनी याचना का पात्र या धनतृष्णा या आखेट वनाने से नही चूकते।

२५६ अकुलीनोपि कुलीनाद्विशिष्ट।

अपनी धनराशि को समाज सेवा मे नियुक्त करने वाला धनी व्यक्ति अकुलीन होने पर भी समाज सेवा से विमुख रहने वाले कुलीन से श्रेष्ठ हो जाता है अर्थात् अधिक सम्मान पाने लगता है।

२६० नासत्यमानभयमनायस्य।

नीच को समाज मे अपने अपमान या तिरस्कार का कोई भय नही होता।

२६१ न चेतनवता वत्तिभयम।

व्यवहारकुशल चतुर लोगो को जीविका न मिलने का कभी भय नही होता।

२६२ न जितेंद्रियाणा विषभयम।

जितेद्रिय व्यक्तियो को विषय के सान्निध्य मे पतित होने की कभी शका नही होती।

२६३ न कृतार्थानां मरणभयम।

ससार का रहस्य समझकर कतव्यपालन करने के द्वारा अपना जीवन साथक करने वालो की मृत्यु भय नही होता।

२६४ कस्यचिदर्थं स्वामिन मन्यते साधु।

महामति साधु लोग पराये धनो को उनके पास रखी हुई अपने धन जैसी सत्य की धरोहर मानते है। अर्थात् वे पराये धनो को भी अपने धनो के समान ही सदुपयोग मे आता देखना चाहते हैं।

२६५ परविभवेष्वादरो न कर्तव्य ।

दूसरो के धनो को लोभनीय नही मानना चाहिए।

२६६ परविभवेष्वादरोपि विनाशमूलम ।

दूसरो के धनो को लोभनीय दष्टि से देखना भी मानव के सामाजिक बधन का घातक तथा सवनाश का कारण होता है।

२६७ अल्पमपि परद्रव्य न हर्तव्यम ।

किसी का एक तिनका क्षुद्रतम धन तक न ी चुराना चाहिए।

२६८ परद्र यापहरणमात्मद्र यनाशहेतु ।

पराये द्रव्य का अपहरण अपने द्रव्य के विनाश का कारण बन जाता है।

२६९ न चौयात पर मत्युपाश ।

मृत्यु का पाश चोरी के पाश से अधिक दु खदायी नही होता।

२७० यवागूरपि प्राणधारण करोति लोके ।

ससार मे शरीर रक्षा के लिए तो यवागू भी पर्याप्त है।

२७१ न मतस्यौषध प्रयोजनम ।

मर चुकने के पश्चात औपध प्रयोग का क्तव्य समाप्त हो जाता है।

२७२ समकाले स्वयमपि प्रभुत्वस्य प्रयोजन भवति ।

साधारण काल मे अपना प्रभुत्व बनाए रखना ही स्वय कर्तव्य का रूप लेकर उपस्थित रहा करता है।

२७३ नीचस्य विद्या पापकर्मणि योजयन्ति ।

नीचो को (चतुराइया) या पदाथ विज्ञान आदि कौशल उनके समस्त बुद्धि वभव (उन्हे विनीत, सृजन, उपकारक तथा धार्मिक न बनाकर) उन्हे चोरी, कपट, मायावी, अनृत, पर

वचन, लुठन, अनधिकार भोग आदि पाप कर्मों मे लगा देता है ।

२७४ पय पानमपि विषवर्धन भुजगस्य नामृत स्यात् ।

जैसे साप को दूध पिलाना उसका विष बढाना है, अमृतोत्पादक नही, इसी प्रकार नीचो का विद्यालाभ उनकी नीच प्रवृत्तियो को ही अनेक गुणा कर देने वाला हो जाता है ।

२७५ नहि धान्यसमो ह्यर्थ ।

ससार मे अन्न जैसा जीवनोपयोगी कोई पदार्थ नही है ।

२७६ न क्षुधासम शत्रु ।

राज्य का अन्नाभावजनित दुर्भिक्ष या अपरितृप्त क्षुधा के समान कोई शत्रु नही है ।

२७७ अकृतेर्नियता क्षुत ।

अकर्मण्य निकम्मे आलसी मानव का भूखो मरना अवश्यभावी है ।

२७८ नास्त्यभक्ष्य क्षुधितस्य ।

क्षुधा पीडित के लिए अभक्ष्य कुछ नही रहता । बुभुक्षित लोग घास, पात, वृक्षो की छाल, मिट्टी, नरमास आदि अमानवोचित आहार करने पर उतर आते हैं । 'कष्टात कष्टतर क्षुधा' भूख ससार का सबसे बडा कष्ट है । राजा लोग "भूखा क्या नही करता" इस डर से अपने देश को अन्न सपन्न बनाए रखे ।

२७९ इन्द्रियाणि जरावश कुर्वन्ति ।

इन्द्रियो का मर्यादाहीन उपयोग मनुष्य को समय से पहले वार्धक्य के अधीन कर देता है ।

२८० सानुक्रोश भर्तारमाजीवेत् ।

जो प्रभु अपने सेवक की मनुष्यता का सम्मान अपनी मनुष्यता के समान ही करता हो वही सेव्य बनाने योग्य होता है ।

२८१ लुब्धसेवी पावके छया खद्योत धमति ।

सहानुभूतिहीन प्रभु का सेवक अग्नि की इच्छा से खद्योत म फूक मारकर उसे आग जलाना (अर्थात् बैल से दूध दुहना) चाहता है।

२८२ विशेषज्ञ स्वामिनमाश्रयेत ।

गुणो का आदर करने वाले, गुणो को पहचानने वाले स्वामी की ही सेवा करना स्वीकार करे ।

२८३ न नीचोत्तमयोर्विवाह ।

नीच और उत्तम मे वैवाहिक मवध नहीं होने चाहिए।

२८४ अगम्यागमनादायुर्यश पुण्यानि क्षीयन्ते ।

अकृत्य कार्य करने से आयु, यश और पुण्य क्षीण हो जाते हैं।

२८५ नास्त्यहकारसम शत्रु ।

अहकार से बडा कोई शत्रु नही है ।

२८६ ससदि शत्रु न परिक्रोशेत ।

सभा मे शत्रु के क्रोध को उत्तजित करने वाली कटु वाणी या अपभाषण करके विचारसभा को छेडछाड की सभा मत बनाओ।

२८७ शत्रुव्यसन श्रवणसुखम ।

शत्रु की विपत्ति अति मधुर होती है ।

२८८ अधनस्य बुद्धिर्न विद्यते ।

धनहीन व्यक्ति की बुद्धि नष्ट हो जाती या प्रसृत होने के अवसरो से वचित हो जाती है।

२८९ हितमप्यधनस्य वाक्य न शृणोति ।

निर्धन के हित वचनो पर भी कोई कान नही देता ।

२९० अधन स्वभार्ययाप्यवमन्यते ।

परिवार के लिए जीवन साधन न जुटा सकने वाला निर्धन अपनी भार्या से भी अपमानित होता है।

२६१ पुष्पहीन सहकारमपि नोपासते भ्रमरा ।

जैसे भौरे पुष्पकाल बीत जाने पर प्रिय आम्रवृक्ष को भी त्याग देते हैं, उसी प्रकार यह धनजीवी ससार निर्धन व्यक्ति के पास अपनी धनाकाक्षा की पूर्ति की सभावना न देखकर उसे त्याग देता है।

२६२ विद्या धनमधनानाम ।

विद्या निधनो का धन है।

२६३ विद्या चौरैरपि न ग्राह्या ।

विद्या मनुष्य का अतर गुप्त धन होने से चोरो से भी नही चुराई जा सकती।

२६४ विद्यया ख्यापिता ख्याति ।

विद्या से यश का विस्तार होता है।

२६५ यश शरीर न विनश्यति।

मनुष्य का भौतिक देह ही मरता है, उसका यश शरीर तो अमर रहता है।

२६६ य परार्थमुपसर्पति स सत्पुरुष ।

जो दूसरो का कल्याण करने मे आगे बढता है वही सत्पुरुष है।

२६७ इन्द्रियाणां प्रशम शास्त्रम्।

इन्द्रियो को शात रखने वाली शक्ति ही शास्त्र है।

२६८ स्वल्पमप्युपकारकृते प्रत्युपकार कर्तुमार्यो न स्वपिति।

सत्पुरुष जब तक उपकारी का प्रत्युपकार करने का अपना मानवोचित कर्तव्य पूरा नही कर लेता तब तक क्षणमात्र भी निश्चित नही बैठता।

२९९ न क्वादि देवतावमन्तका।

देवबुद्धि म पूजे जाने वाले स्थान, चित्रादि वस्तु या देव चरित्र वाले श्रेष्ठ व्यक्तियों का प्रमाद या आलस्य म कभी भी अपमान न करना चाहिए।

३०० न चक्षुष सम ज्योतिरस्ति।

चक्षु ससार की सबस बडी महत्त्वपूर्ण ज्योति है।

३०१ चक्षुर्हि शरीरिणा नेता।

ज्ञान नेत्र ही मनुष्य को विपथ स निवृत्त करने वाला एक मात्र ज्योतिमय पथप्रदर्शक है।

३०२ अपचक्षुष किं शरीरेण।

नेत्रहीन शरीर से ससार यात्रा क्लेशप्रद हो जाती है।

३०३ नाप्सु मूत्रं कुर्यात।

जल मे मूत्र से वह दुष्ट, विषाक्त और अग्राह्य हो जाता है। उसे पीने से रोगोत्पत्ति तथा स्वास्थ्य का नाश होता है। जल सार्वजनिक सपत्ति है, कब किसे उसे पीना पडेगा, इसका कोई नियम नही है। प्रत्येक मनष्य पर सार्वजनिक स्वास्थ्य का जो उत्तरदायित्व है उसकी दृष्टि से उस जल मे मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए।

३०४ न नग्नो जल प्रविशेत।

नग्न होकर जल मे न घुस।

३०५ यथा शरीर तथा ज्ञानम।

जैसा शरीर वैसा ही ज्ञान होता है।

३०६ यथा बुद्धिस्तथा विभव।

जिसकी जसी बुद्धि होती है उसका वैसा ही वैभव होता है।

३०७ अग्नावग्नि न निक्षिपेत्।

आग मे आग न डाले, क्रोध के उत्तर मे क्रोध न करे।

३०८ तपस्विन पूजनीया ।

समाज के मार्गदर्शक जितेन्द्रिय लोग समस्त समाज मे पूजनीय होते हैं ।

३०९ परदारान न गच्छेत ।

परपत्नियो मे सपर्क स्थापित करने की बात मन से भी न सोचे ।

३१० अन्नदान भ्रूणहत्यामपि प्रमार्ष्टि ।

अन्नदान भ्रूण हत्या को भी परिमार्जित कर देता है ।

३११ न वेदबाह्यो धर्म ।

धर्म वेद से बाहर नही होता ।

३१२ न कदाचिदपि धर्म निषधयेत ।

धर्म का विरोध कभी न करे और न कराए ।

३१३ स्वर्ग नयति सूनृतम ।

सत्य मनुष्य को स्वगस्थ सुखमयी अर्थात् अखड स्थिति मे आरूढ कर देता है ।

३१४ नास्ति सत्यात्पर तप ।

ससार का कोई भी तप सत्य से श्रेष्ठ नही है ।

३१५ सत्य स्वर्गस्य साधनम ।

सत्यनिष्ठा रूपी स्वर्ग का साधन भी तो स्वय सत्य ही है ।

३१६ सत्येन धार्यते लोक ।

मानव समाज सत्य से ही सुव्यवस्थित रहता है ।

३१७ सत्याद देवो वर्षति ।

सत्य से मानव समाज के ऊपर देवो की कृपा बरसने लगती है । सत्याधीन समाज मे दैवी शक्ति की वर्षा करती है । सत्यहीन समाज म आसुरी शक्ति प्रबल बन जाती है ।

३१८ नानृतात्पातक परम ।

अनृत व्यवहार से बढकर कोई पाप नही है ।

३१९ न मीमास्या गुरव ।

गुरुजनो का छिद्रान्वेषण नही करना चाहिए ।

३२० खलत्व नोपेयात ।

मनुष्य खलता का आश्रय न ले ।

३२१ नास्ति खलस्य मित्रम ।

धूर्त का कोई मित्र नही होता ।

३२२ लोकयात्रा दरिद्र बाधते ।

जीवन यात्रा की समस्या दरिद्र को चिंतित रखती है ।

३२३ अतिशूरो दानशूर ।

दान मे शूरता दिखाने वाला सच्चा शूर है ।

३२४ गुरुदेवब्राह्मणेषु भक्तिर्भूषणम ।

गुरुदेव तथा ब्राह्मणो (भूदेवो) की भक्ति ही मनुष्य का सुशोभित करने वाला भूषण है ।

३२५ सर्वस्य भूषण विनय ।

सुशील, विनय (सत्यनारायण की सेवा मे आत्मसमर्पण करके, सत्य स्वरूप सुशील, नम्र, विनीत, कर्तव्यशील बन जाना) मनुष्य मात्र का भूषण होता है ।

३२६ अकुलीनोपि विनीत कुलीनाद्विशिष्ट ।

कुलीनता के अहकार मे डूबे हुए सत्यहीन, अविनीत व्यक्ति की अपेक्षा अप्रतिष्ठित घर मे उत्पन्न होने पर भी सत्य को शिरोधार्य करके जीवन यापन करने वाला विनीत व्यक्ति श्रेष्ठ होता है ।

३२७ आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च ।

३३७ जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ ।

मनुष्य के वृद्धि और विनाश उसकी सुवाणी तथा कुवाणी पर निर्भर होते हैं ।

३३८ विषामृतयोराकरा जिह्वा ।

जिह्वा विष तथा अमृत चाहे जिसकी आकर (कोष) बनाई जा सकती है ।

३३९ प्रियवादिनो न शत्रुः ।

हितवादी का कोई शत्रु नहीं होता ।

३४० स्तुता अपि देवता स्तुष्यन्ति ।

मधुर वचन के समर्थन में संसार में यह लोकप्रिय लोकोक्ति प्रचलित है कि स्तुति से तो अदृश्य देवता तक प्रसन्न होकर प्रार्थी की मनोकामना पूरी कर देते हैं मनुष्य का तो कहना ही क्या ?

३४१ अनृतमपि दुर्वचनं चिरं तिष्ठति ।

दूसरों को संताप पहुंचाने या अवज्ञा करने की भावना से कहा दुर्वचन अनृत (निराधार) हो तो भी श्रोता की स्मृति पर चिरकाल तक अपना द्वेषमूलक हानिकारक दुष्प्रभाव बनाए रखता है ।

३४२ राजद्विष्टं न वक्तव्यम् ।

राजा के व्यक्तित्व पर अप्रिय आरोप नहीं करना चाहिए। राजा या उसके प्रतिनिधि को अप्रिय वचन नहीं कहना चाहिए।

३४३ श्रुतिसुखात्कोकिलालापात्तुष्यन्ति ।

जैसे मनुष्य श्रवण सुख कोकिलालापों से तृप्ति अनुभव करते हैं इसी प्रकार विद्वान् लोग राजाओं या राज्याधिकारी बड़े बने हुए लोगों को श्रुतिमधुर सत्यानुमोदित वाक्य परिपाटी में संतुष्ट रखें और अपने कामों में व्याघात उत्पन्न न होने दें ।

३४४ स्वधर्महेतु सत्पुरुष ।

सत्पुरुष का हेतु स्वधर्म होता है। स्वधर्म पालन से ही सत्पुरुष बनते है।

स्वधर्म पालन (स्व कर्तव्यपालन) सत्पुरुषो को ढालने वाला ढाचा है।

३४५ नास्त्यर्थिनो गौरवम ।

समाज मे याँचक का सम्मानपूर्ण स्थान नही है।

३४६ स्त्रीणा भूषण सौभाग्यम ।

पतिव्रता तथा पति पुत्रादि से सौभाग्यशालिनी रहना स्त्रियो का भूषण है।

३४७ शत्रोरपि न पतनीया वृत्ति ।

शत्रु की भी जीविका नष्ट नही करनी चाहिए।

३४८ अप्रयत्नादेक्ष क्षेत्रम ।

जहा जल सुलभ हो वहा कृषि योग्य भूमि होती है।

३४९ एरण्डमवलम्ब्य कुजर न कोपयेत ।

सारशन्य अदढ एरण्ड का आश्रय लेकर महाकाय हाथी को कुपित न करे।

३५० अतिप्रवद्धा शाल्मली वारणस्तम्बो न भवति ।

अत्यत पुराना या अति विशाल भी शाल्मली हाथी का बधन नही बनाया जाता।

३५१ अतिदीर्घोपि कर्णिकारो न मुसली ।

जसे कनकचपा (या कनेर) चाहे जितना लवा और मोटा हो जाने पर भी मूसल बनाने के काम नह। आता, इमी प्रकार निबल मन के पास चाहे जितने भौतिक साधन हो जाए पर वह बल के काम नही कर सकते।

प्रकार दुर्जन किसी प्रकार भी उपदेश, प्रचार आदि द्वारा दुजनता त्यागकर सज्जन नही वनता ।

३५९ न चागत सुख परित्यजेत ।

ध्रुव अल्प सुख को अनागत अध्रुव वहुत के लिए न त्यागे । अनुकूल वतमान को त्यागकर अनिश्चित भावी की आशा से उसके पीछे दौडकर भयभ्रष्ट न वने ।

आया सुख न छोडे । सुअवसर खोना नही चाहिए ।

३६० स्वयमेव दु खमधिगच्छति ।

मनुष्य स्वय ही अपने दु खो का कारण वना करता है दूसरा नही ।

३६१ न रात्रिचारण कुर्यात ।

रात्रि मे भ्रमण न करे ।

३६२ न चाधरात्र स्वपयेत ।

आधी रात बिताकर न सोए ।

३६३ तद्विद्विभ परीक्षत ।

कव सोना, कव जागना, कव खाना तथा कब चलना युक्त है, ये वाते अनुभवी कुलवृद्धों, सभ्रात विद्वानो से सीखें ।

३६४ परगहमकारयतो न प्रविशेत ।

बिना उचित कारण तथा बिना वैध अधिकार के दूसरे के घर मे प्रवश न करे ।

३६५ नात्वापि दोषमेव करोति लोक ।

लोग अपनी सत्य स्वाभाविक बुद्धि से अपने काम को बुरा समझते हुए भी परद्रव्य-हरणादि रूप अपराध कर वैठते है ।

३६६ नास्त्रप्रधाना लोकवृत्ति ।

लोकाचार शास्त्र के आधार पर ही प्रचलित हुए हैं ।

३६७ शास्त्राभावे शिष्टाचारमपुगच्छेत ।

जिसे शास्त्र का ज्ञान न हो या जिसका विवेच्य विषय शा
मे अवर्णित हो वह शिष्टाचार को माने ।

३६८ नाचरिताच्छास्त्र गरीय ।

शास्त्र का महत्त्व शिष्टाचार मे अधिक नहीं है ।

३६९ दूरस्यमपि चारचक्षु पश्यति राजा ।

राजा अपने दूतो को आखो से दूर-दूर देश विदेश को व
समीपस्थ के समान जान लेता है ।

३७० गतानुगतिको लोक ।

साधारण लोक (विचारशील न होकर) गतानुगतिक (भे
चाल) होता है ।

३७१ यमनुजीवेत्त नापवदेत ।

मनुष्य अपने उपजीव्य (जिसके सहार जीविकाजन कर
हो) की निंदा न करे ।

३७२ तप सार इन्द्रियनिग्रह ।

जितेन्द्रियता ही तपस्या की सार (सवस्व निचोड जान
प्राण) है ।

३७३ दुलभ स्त्रीबन्धनान्मोक्ष ।

स्त्री सबधी भोग का बधन सम्मुख आने पर उससे अ
को बचा सकना असाधारण मनोबल और तपस्या का काम है

स्त्री सर्वाशुभो का क्षेत्र है । स्त्री सपर्क समस्त प्रकार
विपत्तियों, शत्रुताओ तथा व्याधियो का कारण बन जाता है

रामायण की घटना, महाभारत का गृह-कलह, पृथ्वीरा
जयचद्र का विनाश तथा यवनो का स्त्रीलोभ से अनेक व
विध्वस्त हुआ । राजस्थान इसका साक्षी है । इसलिए यह
राज्यसस्था तथा राज्यसस्था का निर्माता राष्ट्र स्त्री कारणो

आने वाली विपत्तियो से वचे रहने के लिए स्त्री जाति के सबध मे अपने कर्तव्य के विषय म पूर्ण सचेत रहे। यदि मनुष्य समाज स्त्री जाति को अज्ञानान्धकार मे रखकर उन्हे भोग साधन मात्र बनाए रहकर उन्ह अपने हाथ की कठपुतली बनाए रखेगा तो इसमे जहा देश पथभ्रष्ट होगा वहा पुरुष समाज स्वय भी पथभ्रष्ट होकर भ्रष्टा स्त्रियो के हाथो की कठपुतली वने विना नही रहेगा।

७४ अशुभद्वेषिण स्त्रीषु न प्रसक्ता।

अशुभद्वेषी अर्थात समाजहित मे अपना हित समझने वाले लोग स्त्रैण न बन।

व स्त्रियो मे आसक्त न होकर उनके साथ केवल कर्तव्य का सबध बनाए रखें। स्त्री-आसक्ति से वच रहने से मनुष्यता, यश तथा सुप्रजा प्राप्त होती है और बुद्धि प्रखर हो जाती है। अत्यासक्ति मे स्त्री पुरुष दोनो पतित हो जाते हैं।

३७५ यज्ञफलज्ञास्त्रिवेदविद।

त्रिवेदविद अर्थात् वेदज्ञ वे लोग हैं जो समस्त यज्ञो के फल (फलस्वरूप परमेश्वर औपनिषद् पुरुष या आत्मस्वरूप) को ठीक-ठीक पहचान चुके हैं।

३७६ स्वर्गस्थान न शाश्वतम्।

कर्मोपार्जित दैहिक सुखभोग सदा नही रहा करते।

७७ यावत्पुण्यफल तावदेव स्वर्गफलम।

जव तक पुण्यफल भोगानुकूल कर्म का प्रभाव रहता है तव तक ही स्वर्गफल (भोग सुख) रहता है।

३७८ न च स्वर्गपतनात पर दु खम।

साधारण मानव के लिए भौतिक सुख नाश से बढकर कोई दु ख नही होता।

३७९ देही देह त्यक्त्वा ऐन्द्रपद न वाञ्छति।

देही को देह मे इतनी आसक्ति होती है कि वह वतमान देह छोडकर ऐन्द्रपद तक लेना नही चाहता।

इससे पाठक मानव का यह स्वभाव समझने का प्रयत्न करें कि मानव (देहधारी) मरकर सुखी होना नही चाहता। मरकर सुख चाहने की उसकी इच्छा उधारी और काल्पनिक है। भौतिक सुख के लिए मृत्युवरण अस्वाभाविक स्थिति है।

३८० दु खानामौषध निर्वाणम।

मोक्षलाभ करते हुए जीवन विताना ही दु खो का एकमा प्रतिकार है।

३८१ अनार्यसम्बन्धाद्वरमार्यशत्रुता।

अनार्यो से सौहाद वढाने से आर्यो की शत्रुता अच्छी है।

इसका अथ यह है कि मायावी, कपटी, धूत मित्र स कतव्य विवेकी शत्रु अच्छा होता है। मुख ही मनुष्य समाज शत्रु है और ज्ञानी ही उसका परम मित्र है। ज्ञानी की ओर कभी किसी अनिष्ट की शका नही है। मूख की आर स क किसी भलाई या हित की आशा दुराशा है।

३८२ निहन्ति दुर्वचन कुलम।

दुवचन स कुल के गौरव का नाश हो जाता है।

दुवचन वक्ता के कुल को कलंकित कर देता है। वचन निर्दोषता ही मनुष्य के उच्च कुल का प्रमाणपत्र है। दुव लोग अपने कुल को निश्चित रूप मे कलकित घोषित कर हैं। मुख से वचन निकलते ही सबसे पहले वक्ता के कुल परिचय मिलता है कि यह कैसे कुल मे पला है? मनुष्य व्यक्तिगत परिचय तो पीछे स होता है। सूत्र कहना चाहत कि वक्ता लोग वचन वोलते समय अपने कुल के गौरव का ध्य

रखकर बोलें।

३८३ न पुत्रसम्पर्गात पर सुखम ।

पुत्र-लाभ सासारिक सुखो मे सर्वोत्तम सुख माना जाता है। इस दृष्टि से विधाता ने अपनी सृष्टि परपरा को चलाने तथा माता-पिता के पुत्रो को पलवाने के लिए उन्हे पुत्र मोह नाम की सुदृढ रज्जुओ से बाधा हुआ है। इसी प्रबध से यह सष्टि-परपरा चल रही है। यदि ससार मे पुत्र सुख नाम की वस्तु न होती तो सृष्टि परपरा का चलना ही असभव हो जाता। पिता को दु खमयी या पापमयी स्थिति से उबारने वाला ही पुत्र नाम पान का अधिकारी है।

३८४ विवादे धममनुस्मरेत ।

विवाद (कलह) के समय धम को भूल मत जाओ, उसे अपनाए रहो।

३८५ निशान्ते कार्यं चि तयेत ।

मनुष्य रात्रि का विश्राम समाप्त हो जाने पर अपने दिन-भर के करने के समस्त कार्यो का विचार किया करे।

३८६ उपस्थितविनाशो दुनय मन्यते ।

जिसका विनाश उपस्थित होता है (जिसके बुरे दिन आते है) वही अनीति को अपनाता है।

विनाशोन्मुख की बुद्धि नष्ट हो जाती है। अनीति या दुष्ट नीति स्वय ही विनाश है। मनुष्य समुपस्थित साधना को नीति-पूर्ण रक्षा करे। लब्धव्यो का वैध यत्न से अजन करे तथा प्राप्तो का विवेक से उपयोग करे। यदि मनुष्य अपनी नीति-हीनता से अपने सचित साधनो की रक्षा, जीवनाथ आवश्यक पदार्थों का अजन और अजितो का सदुपयोग नही करेगा तो क्लेश, दीनता तथा बुद्धिमाद्य उसे आ चिपटेंगे।

३८७ क्षीरार्थिन किं करिण्या।

जिसे दूध की आवश्यकता है वह हथिनी को लेकर क्या करे ?

उसे तो गोपालन करना चाहिए। अपने प्रयोजन के उपयोगी द्रव्यो का ही सचय करना चाहिए, अप्रयोजनीय का नही। मनुष्य कोई भी वृथा काम न करे। वृथा कामो से बडे अनर्थ आ खडे होते है।

३८८ द दानसम वश्यम।

दान जैसा लोकवशीकार दूसरा नही है।

धनी लोग दान रूप मे धन के सदुपयोग से समाजहित और कीर्ति का उपार्जन तथा उपकृतो पर वशीकार पा लेते हैं।

३८९ परायत्तेषूत्कण्ठा न कुर्यात।

तुम्हारे जो पदार्थ दूसरो के हाथ मे फस गए हो, उन्हे पाने के लिए उतावले मत वनो। उन्हे पाने के उपाय करने चाहिए। इस सबध मे उत्कठा से अपनी शक्ति पर श्रद्धाहीन नही होना चाहिए। दूसरे की शक्ति पर निर्भर मत रहो। परहस्तगत अधिकार के पुनरुद्धार के लिए दुश्चिता या निराशा छोडकर धैर्य के साथ दृढ प्रयत्न करो। उतावलापन शक्तिहीनता है।

३९० असत्समृद्धिरसद्भिरेव भुज्यते।

बुरो की सपत्ति (या बुरी सपत्ति) बुरो की भोग्य बना करती है।

३९१ निम्बफलम काकर्भुज्यते।

जैसे नाम का निंदित कटु फल कौवो के ही काम आता है इसी प्रकार अशिष्ट उपायों से उपार्जित धन चरित्रहीन लोगो के ही निंदित भोगो मे काम आया करता है। इसलिए मनुष्य उचित उपायो से धनोपार्जन करे जिससे जीवन यात्रा भी हो

और मन का उत्कर्ष भी हो।

३९२ नाम्भोधिस्तृष्णामपोहति।

जैसे समुद्र का खारा पानी किसी भी प्यासे को प्यास बझाने के काम नही आता, इसी प्रकार अशिष्ट उपायो मे उपार्जित धन किसी भी अच्छे काम मे अर्थात किसी भी सच्चे अधिकारी की कामना पूरी करने के काम नही आ सकता।

३९३ बालुका अपि स्वगुणमाश्रयन्ते।

जैसे बालुका अपने रूक्ष कर्कश स्वभाव को पकडे रहती है, इसी प्रकार कोई भी असत मनुष्य अपना स्वभाव नही छोडता और अपने गर्हित उपायो से उपार्जित धन को सत्यार्थ सदुपयोग करने को उद्यत नही होता।

३९४ सन्तोऽसत्सु न रमन्ते।

भद्र पुरुष अभद्र पुरुषो के साथ हिलमिल कर नही रहा करते।

३९५ न हंसा प्रेतवने रमन्ते।

जैसे हस श्मशान मे नही रमते, इसी प्रकार गुणी लोग अयोग्यो के सग मे रहना स्वीकार नही करते।

३९६ अर्थार्थं प्रवर्तते लोक।

सारा ससार अर्थ के लिए कर्म मे प्रवृत्त होता है।

३९७ अशास्त्रकार्यवृत्तौ शास्त्राङ्कुश निवारयति।

अवैध कार्य करने की भावना आने पर शास्त्राङ्कुश (जितेंद्रिय मन का अकुश) उसे रोक लेता है।

३९८ नीचस्य विद्या नोपेतव्या।

नीच की विद्या (शास्त्रज्ञान) नही लेनी अर्थात होनी चाहिए।

३९९ म्लेच्छभाषण न शिक्षेत ।
म्लेच्छ की भाषा न सीखें ।

४०० म्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम ।
म्लेच्छों से भी सुवृत्त सीख लेना चाहिए ।

४०१ गुणे न मत्सरः कर्तव्यः ।
असहिष्णु बनकर गुणों व गुणी की उपेक्षा न करो ।

४०२ शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः ।
शत्रु का भी सद्गुण ग्रहण करने योग्य होता है ।

४० विषादप्यमृतं ग्राह्यम ।
विष से भी अमृत ग्रहण कर लेना चाहिए ।

जब विष अमृत का काम देने लग तब उसे विष न मान कर अमृत रूप म स्वीकार करना चाहिए । विष अपने प्रयोक्ता के कौशल से विष न रहकर अमरत्व दान करने वाला अमृत बन जाता है ।

४०४ अवस्थया पुरुष सम्मान्यते ।
मनुष्य अनुकूल परिस्थिति म ही सम्मान पाता है ।

राजा के सम्मान पाने की एक अवस्था है । राजा अपनी शासन व्यवस्था मे प्रजा से सम्मानित होने योग्य परिस्थिति पैदा करके ही प्रजा से राजभक्ति या सम्मान पाने की आशा कर सकता है । जब तक राज्यसंस्था अपने को प्रजाहित के अनुकूल नही बना लेती, तब तक उसे सम्मान प्राप्त नही होता ।

४०५ स्थान एव नर पूज्यन्ते ।
मनुष्य अपने ही स्वभाव क्षेत्र मे पूजे जाते है ।

४०६ आर्यवृत्तमनुतिष्ठेत ।
मनुष्य आर्य स्वभाव को सदा सुरक्षित रखे ।

/ ॥

विद्या, विनय, नीति, धर्म तथा ज्ञान से सपन्न लोग आर्य, सभ्य, सज्जन या साधु कहाते है।

४०७ कदापि मर्यादा नातिक्रामेत।

कभी भी शिष्टाचार की सीमा का उल्लघन न करो।

४०८ नास्त्यर्थ पुरुषरत्नस्य।

अपनी जीवनव्यापी तपस्या मे राष्ट्र के ललामभूत उत्तम बने हुए पुरुष रत्न की कोई उपमा या भौतिक मूल्य नही है।

४०९ न स्त्रीरत्नसम रत्नम।

कुलभूषण सहधर्मिणी के समान ससार मे कोई रत्न नही है।

४१० सुदुर्लभ रत्नम।

गुणी लोग ससार मे सुदुर्लभ होते है।

जिसका सौंदर्य तथा तेजस्विता चित्ताकर्षक होती है वही रत्न कहलाता है। समाज को अलकृत करने वाले स्त्री पुरुष रत्न कहलाते है।

४११ अयशो भय भयेषु।

अपयश अर्थात् निंद्य आचरण मनुष्य को मनुष्यता मे हीन बना डालने वाली भीषणतम अवस्था है।

४१२ नास्त्यलसस्य शास्त्राधिगम।

पुरुषार्थहीन अजितेंद्रिय व्यक्ति को शास्त्र पर अधिकार प्राप्त नही होता।

४१३ न स्त्रैणस्य स्वर्गाप्तिर्धर्मकृत्य च।

रमणीरत स्त्रैण न तो धर्मकृत्य कर सकता है तथा न सुखी रह सकता है।

इंद्रियाधीन, भोगैकसर्वस्व, कामकिकर, विषयलपट मर्यादा-

हीन कामी पुरुष न तो अपना मानवोचित्त कर्तव्य पाल सकता है और न शारीरिक मानसिक किसी भी प्रकार का सुख पा सकता है।

४१४ स्त्रियो,पि स्त्रैणमय मत।

सहधर्मिणी भी स्त्रैण पुरुषो का अवना की दृष्टि म दखती हैं।

४१५ न पुष्पार्थी सिचति शुष्कतरुम।

जैस पुष्पार्थी शुष्क तर को न सीचकर जीवित को सीचता है इसी प्रकार समाज की शोभा बढान वाले पुत्ररत्न उत्पन्न करने वाली पत्निया मे स्वाभाविक आग्रह होता है कि उन्हे एसे पति मिल जो समाज को सुशोभित करने वाल हो।

४१६ अद्रव्यप्रयत्नो वालुकाक्वाथनादनन्य।

जैस भूख मिटान के लिए बालुका को उबालना निरर्थक होता है इसी प्रकार भ्रात उपायो स सुखान्वेषण भी व्यर्थ होता है।

४१७ न महाजनहास कर्तव्य।

विज्ञ समाज सवको का उपहास नही करना चाहिए।

४१८ कार्यसम्पद निमित्ता सूचयन्ति।

कारण सग्रह ही कार्य की सफलता की सूचना देते हैं।

४१९ नक्षत्रादपि निमित्तानि विशेषयन्ति।

निमित्त नक्षत्रो से भी अधिक महत्त्व रखते है।

मनुष्य समाज म किसी शुभ कार्य का प्रारभ करने के लिए नक्षत्र गतियो के आधार पर शुभ मुहूर्त देखना प्रचलित है। परतु वास्तविकता की दृष्टि मे कार्य की निश्चित सफलता की सूचना तो वही होती है कि शुभ कार्य मे उस कार्य क निमित्त कारण अभ्रात हो। निमित्तो क अभ्रात होन का अभिप्राय यह

है कि उस कर्तव्य की प्रेरणा देने वाली भावना शुद्ध, अटल तथा बलवती हो। जब वर्तमान क्षण के कर्तव्य को इस रीति से निश्चित कर लिया जाए फिर उसमें विलम्ब न करे, उसे तत्क्षण पाल लेना चाहिए। कर्तव्य पालन में विलम्ब करना ही शुभ मुहूर्त को खो देना तथा उसे तत्क्षण कर डालना ही शुभ मुहूर्त को मुक्ति में निगृहीत कर लेना होता है।

४२० न त्वरितस्य नक्षत्रपरीक्षा।

जिस किसी काय को शीघ्र करना हो वह नक्षत्र परीक्षा के झगडे मे न पडे।

४२१ परिचये दोषा न छाद्यन्ते।

परिचित हो जाने पर किसी के दोप अज्ञात नही रहत।

४२२ स्वयमशुद्ध पराना‍शङ्कते।

स्वय पापी व्यक्ति अपनी कसौटी पर कसकर दूसरे भद्र लोगो को भी पापी समझ लेता है।

४२३ स्वभावो दुरतिक्रम।

मनुष्य का मन ज्ञानी या अज्ञानी दोनो मे से किसी एक स्थिति को अपनाकर स्वभाव के प्रवाह मे बहकर या तो ज्ञानानुकूल या अज्ञानोचित आचरणो मे आनद माना करता है। एक दिन किया हुआ कम अगले दिन स्वभाव बन जाता है। स्वभावानुयायी काम करना किसी एक दिन मे सीमित न रहकर सनातन स्वभाव का रूप ग्रहण कर लेता है। यह असभव बात है कि एक दिन शुभ कम मे आनद लेन वाला मनुष्य अगले दिन अशुभ कर्म करने वाला अज्ञानी बन जाए। जब तक अज्ञानी को अज्ञान मे मिठास आता रहता है तब तक शुभ कम उसके लिए कष्टसाध्य या कष्टप्रद ही बना रहता है। शुद्ध भावना की मधुरता ही शुभ कम कराती तथा करा

सकती है। शुद्ध भावना ही ज्ञान है। जब मनुष्य ज्ञानी बन चुकता है तब ही उसका मन शुभ कर्म का मीठा स्वादन करने में समर्थ होता है। यों ज्ञान की आखें बंद करके रहने वाले अज्ञानी का कोई आचरण उन्मीलित चक्षु ज्ञानी के आचरणों के समान नहीं हो सकता। इस दृष्टि से ज्ञानी समाज का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र सेवार्थी के ज्ञान का पूर्ण परिचय पाए बिना, उसे समाज कल्याण से संबंध रखने वाली राष्ट्र सेवा के क्षेत्र में सम्मिलित या नियुक्त न करे।

४२४ अपराधानुरूपो दण्डः।

दण्ड अपराध के अनुरूप होना चाहिए।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥

दंड ही प्रजा पर शासन तथा उसकी रक्षा करने वाला है। वह सोते हुओं में भी जागता है। इसलिए विद्वान लोग (धर्म को धर्म न कहकर धर्म का संरक्षक होने से) दंड को ही धर्म कहते हैं।

४२५ कथानुरूपं प्रतिवचनम्।

प्रत्युत्तर प्रश्न के अनुरूप होना चाहिए।

४२६ विभवानुरूपमाभरणम्।

मनुष्य अपनी देह की सजावट को अपनी आर्थिक स्थिति में सीमित रखे।

४२७ कुलानुरूपं वृत्तम्।

आचरण अपने कुल के अनुरूप होना चाहिए।

अपने आचरणों से अपने यशस्वी कुल की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए। ज्ञानी समाज वही मनुष्य का कुल है। ज्ञानी समाज ही राष्ट्र की राज शक्ति का निर्माता है। वहीं प्रभु या

स्वामी बनकर राजशक्ति को सर्व हितकारी ज्ञान मार्ग पर चलाता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का ज्ञानी समाज का सदस्य बने रहना ही अपना अभीष्ट है। इस बात को कभी न भूलकर अपने स्वभाव को सामाजिक सुख-समृद्धि में सीमित रखना चाहिए। मनुष्य के कुल में जन्म लेने वालों से यह आशा की जाती है कि उनका सदाचार उनकी नीति परायणता आदि ऊंची श्रेणी की हो। उनका आचार, निर्मल तथा हृदयग्राही हो। निकृष्ट आचरण बताते हैं कि यह मनुष्य किसी हीन कुल की प्रसूति है।

४२८ कार्यानुरूप प्रयत्न।

प्रयत्न कर्म के अनुसार होना चाहिए।

४२९ पात्रानुरूप दानम्।

दान तथा उसकी मात्रा, दानपात्र की उत्तमता, मध्यमता तथा अधमता अर्थात् उसकी विद्या, गुण, अवस्था तथा आवश्यकतारूपी योग्यता के अनुसार होनी चाहिए।

४३० वयोनुरूपो वेश।

वेश अवस्था के अनुरूप होना चाहिए।

४३१ स्वाम्यनुकूलो भृत्य।

भृत्य को स्वामी के अनुकूल आचरण करने वाला होना चाहिए।

४३२ भर्तृवशवर्तिनी भार्या।

भार्या के भर्ता के अनुकूल रहने में ही गृहस्थ जीवन का कल्याण है।

४३३ गुरुवचनानुवर्ती शिष्य।

शिष्य को गुरु की इच्छा का अनुवर्ती होना चाहिए।

यहा वश शब्द इच्छा के अर्थ के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। मानव समाज मे मनुष्यता का सरक्षण तथा सुख-समृद्धि का उत्पादन करने वाली आध्यात्मिक तथा सर्व प्रकार की भौतिक विद्या गुरु परपरा से ही सुरक्षित रहती है। गुरु का कर्तव्य है कि वह समाज सेवा के द्वारा अपनी विद्या का सदुपयोग करके ऋषि ऋण से उऋण हो जाए। उसका कर्तव्य है कि वह योग्य पात्र को शिष्य के रूप मे अपनाकर उसको यथोचित ज्ञान सदा करके समाज के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रदर्शन करे। शिष्य यह तब ही कर सकता है जब गुरु मे आत्मसमर्पण करके रहे। अर्थात् अपने आपको गुरु के वातावरण का आज्ञाकारी अग बनाकर रखे। गुरु की विद्या का ग्रहण तब ही सभव है जब शिष्य गुरु की इच्छा का अनुवर्तन करके उसके प्रेम को अपनी ओर आकृष्ट कर ले।

४३४ पितृवशानुवर्ती पुत्र ।

पुत्र को पिता की इच्छा का अनुवर्ती होना चाहिए।

पिता के समस्त अनुभव तथा उनकी सपत्ति चाहने वाले पुत्र को उसकी शुभ इच्छाओ का अनुवर्ती होकर रहना चाहिए।

४३५ अत्युपचार शकितव्य ।

किसी का अधिक लाभनीय सामग्री प्रस्तुत करना सदेह की दृष्टि से देखना चाहिए कि ऐसा क्यो किया जा रहा है ?

४३६ स्वामिनि कुपिते स्वामिनमेवानुवर्तेत ।

प्रभु के कुपित होने पर उसी को प्रसन्न करना चाहिए।

४३७ मातृताडितो वत्सो मातरमेवानुरोदिति ।

जैसे माता द्वारा ताडित बालक ताडनजन्य रुदन करता हुआ भी माता ही के पास जाता तथा उसी के आचल मे मुह छिपा

कर उसी से अपना रोना रोता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने हितैषियो, स्वजनो, गुरुओ तथा प्रभुओ के उचित कारण से कुपित हो जाने पर उन्हे ही अपनाए रहे तथा आत्म सुधार करके अपनी ओर से उन्हे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहे।

४३८ स्नेहवत स्वल्पो हि रोष ।

स्नेही गर लोगो का रोष अनिष्ट भाव से रहित होता है।

स्नेहवानो का रोष अनिष्टकारी न होकर सुधारक भावना या हितबुद्धि से प्रेरित होता है। ऊपर इसी भावना से उनके कुपित हो जाने पर भी उन्ही का अनुसरण करने के लिए कहा जाता है।

४३९ आत्मच्छिद्र न पश्यति परच्छिद्रमेव पश्यति बालिश ।

मूर्ख अपना अपराध न देखकर दूसरो ही का अपराध देखा करता है।

४४० सोपचार कैतव ।

धूर्त लोग दूसरो के कपट सेवक बना करते है।

४४१ काम्यैरभिवृत्तचरणमुपचार ।

विशिष्ट काम्य पदार्थों की भेंटो से दूसरो को अपनी असत्य की दासता मे सहायक बनाने का प्रयत्न करना धूर्तों की सेवा का स्वरूप होता और यही उपचार कहलाता है।

४४२ चिरपरिचितानाम् अत्युपचार शङ्कितव्य ।

चिर परिचित व्यक्ति की अनुचित सेवा शकनीय होनी चाहिए।

जब चिर परिचित लोग लाभोपादानो से वशीकरण मत्र चलाने लगें तब उनका या उनके उपचारो का त्याग निर्बल वाले के लिए दुष्कर हो जाता अर्थात् तब त्याग और - विकट समस्या खडी हो जाती है।

४४३ गौर्दुष्करा श्वसहस्रादेकाकिनी श्रेयसी ।

जैसे बिगडी भी अकेली गौ सहस्र कुत्तों से अधिक उपकारी होती है इसी प्रकार उपचारहीन सखा भी उपकारी व्यक्ति अनुपकारी सहस्र ठग परिचितों से श्रेष्ठ होता है।

४४४ श्वो मयूरादद्य कपोतो वरः ।

भविष्य में मिलने वाले बड़े मोर से अब मिलने वाला छोटा सा कबूतर अच्छा है।

४४५ अतिप्रसंगो दोषमुत्पादयति ।

किसी भी काम में अनतिकता का आ घुसना उस काम के उद्देश्य का विनष्ट करने वाला कर्तव्यभ्रष्टता है।

४४६ सर्व जयत्यक्रोधः ।

क्रोधहीन व्यक्ति विश्वविजयी बन जाता है।

अध्याय एक

प्रणम्य शिरसा विष्णु त्रलोक्याधिपति प्रभुम ।
नाना शास्त्रोदधृत वक्ष्ये राजनीति समुच्चयम ॥ १ ॥

मैं नमन करता हू उन अनादि भगवान विष्णु को जो तीनो लोको के स्वामी है। तथा मैं अनकानेक शास्त्रो से उद्धृत राजनीति सबधी बातो को स्पष्ट करता हू।

अधीत्यद यथा शास्त्र नरो जानाति सत्तम ।
धर्मोपदेश विख्यात कार्याऽकार्य शुभाशुभम् ॥ २ ॥

शास्त्र मतानुसार जो व्यक्ति शुभ एव अशुभ इस नीति विषय को अध्ययन करके भली प्रकार जान लेता है वह उत्तम प्राणी माना जाता है।

तदह सप्रवक्ष्यामि लोकाना हित काम्यया ।
यस्य विज्ञान मात्रेण सर्वज्ञत्व प्रपद्यते ॥ ३ ॥

मैं जन मानस के हित व भलाई के लिए वही बात कहूगा जिसे समझकर मनुष्य सवज्ञ हो जाता है।

मूढ शिष्योपदेशेन दुष्टा स्त्री भरणेन च ।
दु खिन सप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥ ४ ॥

मूख शिष्य को उपदेश प्रदान करने से, कर्कशा, झगडालू स्त्री का भरण-पोषण करने से तथा दु खियो से सपर्क रखने से महा पडित, समझदार व्यक्ति को भी दुखी ही होना पडता है।

दुष्टा भार्या शठ मित्र भृत्यश्चोत्तरदायक ।
ससर्प च गृहे वासो मृत्युरेव न सशय ॥ ५ ॥

जिस मनुष्य की स्त्री दुष्टा हो, शठ अर्थात् मूर्ख मित्र हो, उत्तर देने वाला अर्थात् सामने बोलने वाला नौकर हो, घर में साप का वास हो अर्थात् घर मे साप रहता हो तो निश्चय ही समझ ले कि उसकी मृत्यु यदा कदा अवश्य ही होगी।

उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु सकटे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धव ॥ ६ ॥

जो प्राणी रोगावस्था मे, उत्सव मे, दुर्भिक्ष अर्थात् अकाल मे, शत्रु द्वारा किसी प्रकार का सकट उपस्थित होने पर, राज द्वार मे, श्मसान मे साथ देता है, ठीक समय पर आ उपस्थित होता है वही सच्चा बंधु कहलाने का अधिकारी है, अन्य नही।

धनिक श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पचम ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवस वसेत ॥ ७ ॥

धनाढ्य व्यक्ति अर्थात् अर्थसपन्न, वेदाभ्यासी ब्राह्मण, राजा, नदी, जलाशय व वैद्य उक्त पाच जहा पर नही हो, वहा पर एक दिन भी ठहरना उचित नही है।

आपदर्थे धन रक्षेद्दारान रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मान सतत रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ ८ ॥

विपत्ति काले मर्यादा नास्ति। अत विपत्ति काल के लिए धन सग्रह करके रखना चाहिए और धन से रक्षा स्त्री की करनी चाहिए परतु धन और स्त्री से भी बढकर अपनी रक्षा करना चाहिए।

लोक यात्रा भय लज्जा दाक्षिण्य त्यागशीलता ।
पच यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तैप सगतिम ॥ ९ ॥

जहा पर आजीविका, भय, लज्जा, चतुरता और त्यागभाव उक्त ५ गुण नही हो, ऐसे लोगो के साथ मित्रता नहीं ही करनी चाहिए।

//

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धव ।
न च विद्यागमोऽप्यस्ति वासस्तत्र न कारयेत ॥ १० ॥

जिस देश मे व्यक्ति का सम्मान न हो, आजीविका न हो, अपना जन अर्थात भाई-बन्धु न हो, विद्या की प्राप्ति न हो अर्थात विद्या का आगम न हो, वहा कदापि नही रहना चाहिए ।

जानीयात प्रेषणे भृत्यान बान्धवान व्यसनागमे ।
मित्र चापत्तिकाले तु भार्या च विभवक्षये ॥ ११ ॥

सेवा काम का अवसर उपस्थित होने पर सेवको की, दुख के समय बन्धु बान्धव की आपत्ति काल मे मित्र की, धन नष्ट हो जाने पर पत्नी की परीक्षा हो जाती है ।

आपदर्थ धन रक्षेच्छ्रीमयश्च किमापद ।
कदाचिच्चलिता लक्ष्मी सचितोऽपि विनश्यति ॥ १२ ॥

आपत्ति से बचने के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए । पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि श्रीमान् के पास आपत्ति आएगी ही क्यो ? उत्तर यह है कि दवात् श्रीमानो पर भी विपत्ति आ सकती है । लक्ष्मी चचला है अत लक्ष्मी के चले जाने पर जो कुछ बचा बचाया धन है वह भी चल जाएगा ।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुव परिसेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुव नष्टमेवहि ॥ १३ ॥

जो मनुष्य निश्चित वस्तु को त्याग कर अनिश्चित की ओर दौडता है तो उसकी निश्चित वस्तु भी नष्ट हो जाती है और अनिश्चित तो पहले ही नष्ट थी ।

स्त्रीणा द्विगुण आहारो लज्जा चापि चतुगुणा ।
साहस षडगुण चव कामाश्चाष्टगुण स्मृत ॥ १४ ॥

पुरुष की अपेक्षा स्त्रियो मे आहार दुगना, लज्जा चार गुनी, साहस छ गुना व कामोत्तेजना आठ गुनी होती है ।

वरयेत्कुलजां प्राज्ञो निरुपामपि कन्यकाम ।
रूपशीलां न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले ॥ १५ ॥

समझदार व्यक्ति वही है कि वह कुरुपा भी कुलवती कन्या के साथ विवाह करे परन्तु रूपवती पर नीच, अकुलीन के साथ कदापि विवाह न करे। समान कुल मे ही विवाह करना उचित रहता है।

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि कांचनम ।
नीचा दप्युत्तमां विद्या स्त्री रत्न दुष्कुलादपि ॥ १६ ॥

विष मे से भी अमृत, अपवित्र स्थान से भी स्वण, नीच जनो से भी विद्या और दुष्ट कुल से भी सुशील कन्या को ले लेना चाहिए।

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखीनां शृंगिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥ १७ ॥

नदियो, शस्त्रधारियो, नख व सीग वाले जन्तुओ, स्त्रियो, राज कुल के लोगो का भूल कर भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

अध्याय दो

प्रमत साहस माया मूखत्वमतिलोभिता ।
अशौचत्व निर्दयत्व स्त्रीणा दोषा स्वभावजा ॥ १ ॥

असत्य भाषण, अकस्मात किसी काय मे साहस का प्रदशन या एकाएक कोई काय कर बैठना, छल प्रपच, मूखता, लोभ, लालच अपवित्रता और दुष्टतापूर्ण व्यवहार करना ये स्त्री जाति के सहज स्वाभाविक दोष हैं।

यस्य पुत्रो वशी भूतो भार्या छन्दानुगामिनी ।
विभवे यस्यसन्तुष्टस्य स्वग इहैव हि ॥ २ ॥

जिसका पुत्र वश मे हो, और जिसकी स्त्री आज्ञाकारिणी हो और जो प्राप्त हुए धन से सन्तुष्ट हो, उसका स्वर्ग यही पर ही तो है।

भोज्य भोजन शक्तिश्च रतिशक्ति वारांगना ।
विभवो दान शक्तिश्च नाल्पस्य तपस फलम ॥ ॥ ३

भोज्य पदार्थों का उपलब्ध होते रहना, भोजन की शक्ति का विद्यमान रहना, रति शक्ति अर्थात् भोगेच्छा बनी रहना, सुन्दर स्त्री का मिलना, इच्छानुकूल धन रहना, दानमय प्रवृत्ति रहना ये बाते होना साधारण तपस्या का फल नहीं है। जो अखड तपस्या किए रहता है उसको उक्त चीजे उपलब्ध होती हैं।

ते पुत्रा ये पितुभक्ता पिता यस्तु पोषक ।
तन्मित्र यत्र विश्वास सा भार्या यत्र निर्वृत्ति ॥ ४ ॥

पुत्र वही पुत्र है जो पिता का परम भक्त है। वही पिता, पिता है जो निज सतान का उचित धर्मानुसार पालन-पोषण

करता है। मित्र वही है कि जिस पर अपना विश्वास है और पत्नी वही है जिससे हृदय मे आनद उत्पन्न होता है।

पुनश्च विविध शीलर्नियोज्या सतत बुधै ।
नीतिज्ञा शील सम्पन्ना भवन्ति कुलपूजिता ॥ ५ ॥

बुद्धिमान प्राणियो को चाहिए कि वह अपनी सतान, पुत्रों को विभिन्न प्रकार से सदाचार की शिक्षा दे। क्योकि नीति को जानने वाले और शील सपन्न पुत्र कुल मे पूजित होते है।

कष्ट च खलु मूर्खत्व कष्ट च खलु यौवनम ।
कष्टात्कष्ट तर चैव पर गेह निवासनम् ॥ ॥ ६

मूर्खता दु खदायी होती है। जवानी भी दु ख देती है। परतु पराये घर मे रहना और भी दु खदायी होता है।

परोक्षे काय्य हन्तार प्रत्यक्षे प्रियवादिनम ।
वर्जयेत्तादश मित्र विषकुम्भम्पयोमुखम ॥ ७ ॥

जो पीठ पीछे अपना काम विगाडता हो और मुह पर मीठी मीठी बातें करता हो, ऐसे मित्र को त्याग देना चाहिए। वह वैस ही है जैसे किसी घडे मे गले तक विष भरा हो परतु मुह पर थोडा सा दूध डाल दिया गया हो।

माता शत्रु पिता वरी येन बालो न पाठित ।
न शोभते सभा मध्ये हस मध्ये बको यथा ॥ ८ ॥

जो माता-पिता अपने पुत्रो को पढाते नही है वे शत्रु हैं। क्योकि जिसके कारण वे सभा मध्य ऐसे ही शोभा नही पाते हैं जैसे हसो के मध्य बगुला।

मनसा चिन्तित काय वचसा न प्रकाशयेत ।
मन्त्रेण रक्षेयद गूढ काय चापि नियोजयेत ॥ ९ ॥

अपने मन ही मन मे सोची हुई बात को मुख से नही निकाले परतु सोच विचार से ही इसकी भली प्रकार रक्षा करे और

गुप्त ढग से ही उस काम को करे।

लालनाद्‌ बहवो दोषा स्ताडनाद बहवो गुणा ।
तस्मात्पुत्र च शिष्य च ताडयन न तु लालयेत ॥१०॥

बच्चो को अधिक लाडप्यार करने से दोष और प्रताडना करने मे बहुत गुण है। इसलिए पुत्र और शिष्य का ताडना अधिक दे, दुलार नही।

न विश्वसत्कुमित्रे च मित्रे चापि न विश्वसेत।
कदाचित्कुपित मित्र सव गुह्य प्रकाशयेत ॥११॥

कुमित्र का विश्वास भूल कर भी नही करे और मित्र पर भी विश्वास न करें क्योकि शायद मित्र कुपित होने पर आपकी गोपनीय बातो को खोल दे।

शल शले न माणिक्य मौक्तिक न गज गजे।
साधवो नहि सर्वत्र चदन न वने वने ॥१२॥

हर पवत पर मणि माणिक्य, हर हाथी के मस्तक मे मुक्ता, हर स्थान पर साधु, और हर वन मे चदन पैदा नही होता।

श्लोकेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धा र्द्धाक्षरेण वा।
अवध्य दिवस कुर्याद्दानाध्ययन कमभि ॥१३॥

किसी एक श्लोक या उसके आध भाग या आधे के आधे भाग का मनन करे। क्योकि हमारे महर्षियो का कहना है कि जैसे भी हो, दान, स्वाध्याय कम बीतने हुए दिनो का साथक करो।

समाने शोभते प्रीति राज्ञि सेवा न शोभते।
वाणिज्य व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गहे ॥१४॥

मित्रता बराबर वाले से करने पर ही शोभा होती है। सवा राजा को शोभा देती है। व्यापारी को व्यापार शोभा देता है और सुदर स्त्री से घर की शोभा होती है।

कान्ता वियोग स्वजनापमानो
ऋणस्य शेष कुनृपस्य सेवा।

दरिद्र भावो विषया सभा च
विनाग्निमत प्रदहन्ति कायम ॥१५॥

स्त्री अर्थात पत्नी का वियोग, स्वजनों द्वारा अपमान, युद्ध मे बचा हुआ शत्रु दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता और स्वार्थियों की सभा ये बातें अग्नि के बिना ही शरीर का जला डालती हैं।

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम ।
प्राप्तविद्या गुरु शिष्या दग्धारण्य मृगास्तथा ॥१६॥

दक्षिणा लेकर ब्राह्मण यजमान को, विद्यार्थी विद्या प्राप्त करके गुरु को और जल जगल को वन्य जीव त्याग देते हैं।

नदी तीरे च ये वृक्षा परगृहेषु कामिनी ।
मन्त्रिहीनाश्चराजान शीघ्र नश्य त्यसशयम ॥१७॥

नदी के तट पर उगे हुए वृक्ष, पराये घर मे रहने वाली स्त्री, बिना मत्री के राजा ये निश्चय ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

दुराचारी दुरादृष्टिर्दुरावासा च दुर्जन ।
यन्मैत्री क्रियतेपुम्भिनर शीघ्र विनश्यति ॥ १८॥

बुरे आचरण वाले व्यभिचारी, कुस्थान मे रहने वाले, दुर्जन पुरुषों से मैत्री करने वाला प्राणी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

बल विद्या च विप्राणा राज्ञा सैन्य बल यथा ।
बल वित्त च वैश्याना शूद्राणां च कनिष्ठता ॥१९॥

ब्राह्मणो का बल विद्या है। राजाओ का बल सेना है। वैश्यो का बल धन है। सेवा का बल शूद्रो का होता है।

निधन पुरुष वेश्या प्रजा भग्न नृप त्यजेत ।
खगा वीतफल वृक्ष भुक्त्वा चाभ्यागतो गृहम ॥२०॥

वेश्या निधन को, प्रजा शक्तिहीन राजा को, पक्षी फल विहीन वृक्ष को, त्याग देते है और भोजन कर लेने के बाद अतिथि उस घर को छोड देता है।

अध्याय तीन

कस्य दोष कुले नास्ति व्याधिना को न पीडित ।
व्यसन केन न प्राप्त कस्य सौख्य निरन्तरम् ॥१॥

दोष किसके कुल मे नही है ? व्याधि से पीडित कौन नही है ? दुख किसको नही मिलता ? सदा सुख ही सुख किसे मिला है ? अर्थात् किसी को नही।

रूप यौवन सम्पन्ना विशाल कुल सम्भवा ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुका ॥२॥

रूप और यौवन से युक्त, बडे कुल मे उत्पन्न, पर विद्याविहीन मनुष्य, बिना सुगध के पुष्प के समान शोभित नही होता है।

सत्कुले योजयेत्कन्या पुत्र विद्यासु योजयेत ।
व्यसने योजयेच्छत्रु मित्र धर्मे नियोजयेत ॥ ॥

मनुष्य का कर्तव्य है कि अपनी कन्या किसी श्रेष्ठ खानदान वाले को दे। पुत्र को विद्याभ्यास मे लगा दे। शत्रु को किसी विपत्ति मे फसा दे और मित्र को धर्म कार्य मे लगा दे।

एतदर्थ कुलीनाना नृपा कुर्वन्ति सग्रहम ।
आदिमध्यावसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम ॥४॥

राजा जन कुलीन लोगो को इस कारण अपने पास रखते है क्योकि वे आदि, मध्य और अन्त किसी भी समय राजा को नही छोडते है।

दुर्जनेषु च सर्पेषु वर सर्पो न दुर्जन ।
सर्पो दशति कालेन दुर्जनस्तु पदे पदे ॥५॥

दुर्जन और साप—इनमे साप दुर्जन से अच्छा है। साप काल

आने पर ही काटता है परतु दुजन प्राणी तो पग-पग पर काटता है।

प्रलये भि न मर्यादा भवन्ति किल सागरा।
सागरा भवमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधव ॥ ॥

प्रलय काल म सागर तो अपनी मर्यादा भग कर देता है उमडकर ससार को डुबो देता है। पर सज्जन लोग प्रलय काल मे भी अपनी मर्यादा का उल्लघन नहीं करता है।

मूर्खस्तु परिहर्त्तव्य प्रत्यक्षो द्विपद पशु ।
भिनत्ति वाक्य शूलेन अदृश्य कटक यथा ॥७॥

मूख व्यक्ति को दो पर वाला पशु समभकर त्याग ही देना श्रेयस्कर है, क्योकि यह समय समय पर अपने शब्द रूपी काटे से उसी प्रकार वेधता है जैसे न दिखाई देने वाला काटा चुभ जाता है।

आचार कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम ।
सम्भ्रम स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम ॥८॥

कुल का पता आचार से, देश का वाणी स, प्रेम का आदर से तथा शरीर का पता भोजन से चलता है।

कोकिलानां स्वरो रूप नारी रूप पतिव्रतम ।
विद्या रूप कुरूपाणां क्षमा रूप तपस्विनाम ॥९॥

कोकिल का सौंदय उसकी वाणी, स्त्री का सौदय उसका पतिव्रत धम कुरूप का सौंदर्य उसकी विद्या और तपस्वियो का सौदय उसकी क्षमा शक्ति है।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्या युक्ते न साधुना।
आह्लादित कुल सव यथा चन्द्रेण शर्वरी ॥१०॥

एक विद्वान् साधु स्वभाव वाले सुपुत्र से सपूर्ण कुल ऐसा आनदित हो जाता है जैसे चद्रमा के प्रकाश से रात्रि जगमग जगमग कर उठती है।

त्यजेदेक कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुल त्यजत ।
ग्राम जनपदस्मार्थे आत्मार्थे पथिवीं त्यजेत ॥११॥

जहा एक के त्यागने से कुल की रक्षा होती हो, वहा एक को त्याग देना चाहिए। यदि कुल को त्यागने से गाव की रक्षा होती हो तो कुल का त्याग कर देना चाहिए। यदि ग्राम को त्यागने से जिले की रक्षा होती हो तो गाव का त्याग कर देना चाहिए, और यदि पृथ्वी को त्यागने से आत्मरक्षा होती हो तो उस पृथ्वी को ही त्याग दें।

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगधिना ।
वसित तद्वन सव सपुत्रेण कुल यथा ॥१२॥

जगल मे एक ही वृक्ष हो पर वह श्रेष्ठ, सुन्दर, पुष्पित, सुगधित हो तो सारा वन सुगधित हो जाता है जैसे सुपुत्र से कुल।

को हि भार समर्थाना किं दूर व्यवसायिनाम ।
को विदेश सुविद्याना, क पर प्रिय वादिनाम ॥१३॥

सामर्थ्यवान पुरुप को कोई वस्तु भारी नही हो सकती है। व्यवसायी मनुष्य के लिए कोई प्रदेश दूर नही कहा जा सकता और प्रियवादी मनुष्य किसी का पराया नही कहा जा सकता।

किं जातवहुभि पुत्र शोक सन्तापकारकै ।
वरमेक कुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥१४॥

दु खदायी अनेक पुत्रो से कुल को क्या लाभ हो सकता है ? सहारा देने वाला एक ही श्रेष्ठ है जिससे सारा कुल विश्राम पाता है।

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावण ।
अतिदानादवलिबद्धो ह्यति सवत्र वजयेत ॥१५॥

अत्यत रूपवती होने से सीता का हरण हुआ। अतिशय गव किए जाने से रावण मारा गया। अतिशय दान देने से राजा

अध्याय चार

आयु कर्म वित्तञ्च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ ॥

आयु, कर्म धन, विद्या और मृत्यु ये पाच बाते जीव के गर्भावस्था म रहने पर ही लिख दी जाती ह ।

दर्शन ध्यान संस्पर्शैर्मत्सी कूर्मी च पक्षिणी ।
शिशुम्पालयते नित्य तथा सज्जनसगति ॥२॥

ज्यो मछली दर्शन से, ध्यान से कछुई और पक्षिणी स्पर्श से अपने बच्चो का पालन करती है, ठीक उसी प्रकार की सगति मे मनुष्य पलते ह ।

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्र मित्राणि बान्धवा ।
ये च त सह गन्तारस्तद्धर्मात्सुकृत कुलम ॥ ॥

ससार के अधिकाश, पुत्र, मित्र और बन्धुजनो से पराङमुख हो रहते ह, परतु जो पराङमुख न रहकर सज्जनो के साथ रहते ह, उन्ही के धर्म से वह कुल पुनीत हो जाता है ।

यावत्स्वस्थोह्य देहो तावन्मृत्युश्च दूरत ।
तावदात्महित कुर्यात प्राणान्ते किं करिष्यति ॥४॥

मृत्यु तभी तक दूर है जब तक शरीर स्वस्थ है । इस बीच आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिए । जब जीवन का अत आ जाएगा तो कोई क्या करेगा ।

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गर्भिणी ।
कोऽर्थ पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान ॥५॥

ऐसी गाय का भला क्या उपयोग है जो न तो गर्भिणी होती

है और न कभी दूध देती है। ठीक इसी प्रकार उस पुत्र के पैदा होने से क्या लाभ है जो न तो विद्वान् है और न भक्तिमान है।

मूखश्चिरायुर्जातो पि तस्माज्जातमतो वरम।
मत स चाल्पदु खाय याज्जीव जडो दहेत ॥६॥

पुत्र चिरजीवी हो पर मूर्ख हो तो उसका चिरजीवी होना अच्छा नही है उसका मर जाना ही श्रेयस्कर है। मरा हुआ पुत्र कुछ ही दिन के दु ख का कारण बनता है पर जीवित जीवन भर जलाता रहता है।

कामधेनु गुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी।
प्रवासे मातसदृशी विद्या विद्या गुप्त धन स्मतम ॥७॥

विद्या मे कामधेनु के समान गुण विद्यमान हैं। यह असमय मे भी फल देती है। विदेश मे सहोदर के समान है, विद्या गुप्त गोपनीय धन है अत विद्या का सचय अवश्य करना चाहिए।

सकृज्जल्पति राजान सकृज्जल्पति पडिता ।
सकृत्कन्या प्रदीय ते त्रीण्येतानि सकृत सकृत ॥८॥

राजा का आदेश एक ही बार होता है। पडितो का बोलना व कन्यादानादि बातें भी एक ही बार होती है।

कुग्रामवास कुलहीन सेवा
कभोजन क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या
विनाग्निना ते प्रदहन्ति कायम ॥९॥

अशुभ कुग्राम मे ठहरना, नीच जन की सेवा, खराब भोजन, लडाकू स्त्री, मूर्ख पुत्र, विधवा लडकी ये छ आग के विना ही मनुष्य को जला देते है।

एकाकिना तपो द्वाभ्या पठन गायन त्रिभि ।
चतुर्भिर्गमन क्षेत्र पञ्चभिबहुभीरणम ॥१०॥

अकेले तप, दो का विद्याभ्यास, तीन का सगीत, चार का

माग चलना, पाच से कृषि और बहुतो से युद्ध भली प्रकार होता है।

ससारताप दग्धाना त्रयोविश्रान्तिहेतव ।
अपत्य च कलत्र च सता सगतिरेव च ॥११॥

सासारिक ताप से जलन हुए लोगो के तीन ही विश्राम स्थल है—पुत्र, स्त्री और सज्जन पुरुषो का सतसग।

सा भार्या या शुचिदक्षा सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी ॥१२॥

वही स्त्री, सही अर्थो मे स्त्री है जो पवित्र और चतुर है, जो पतिव्रता है, जिस पर पति की प्रीति है जो सत्यवादी है वह स्त्री दान-मान से पालन पोषण लायक है।

अग्निर्देवो द्विजातीना मनीषिणा हृदि दवतम।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सवत्र समदर्शिनाम् ॥१३॥

द्विजातियो का देवता अग्नि है। देवता मनुष्यो के हृदय मे निवास करत ह। साधारण बुद्धि वालो का देवता मूर्ति है और समदर्शियो के लिए सब स्थान मे देवता है।

त्यजेद्धर्मं दयाहीन विद्याहीन गुरु त्यजेत।
त्यजेत्क्रोधमुखीन्भार्यान्नि स्नेहा बाधवास्त्यजत ॥१४॥

जिस धर्म मे दया का उपदेश न हो, वह धर्म ही त्याग देना चाहिए। जिस गुरु मे विद्या का अभाव हो उस गुरु को त्याग देना चाहिए। जो सदैव क्रोध करती हो उस स्त्री को त्याग दिया जाना चाहिए। स्नेह हीन बाधवो का त्याग उचित ही है।

अपुत्रस्य गह शू य दिश शू यास्त्वबा धवा।
मूखस्य हृदय शू य सवशून्य दरिद्रता ॥१५॥

पुत्रविहीन घर सूना है। बिना बधुओ के दिशाए ह। मूख का हृदय शू य है और निधन का सब सूना है।

क काल कानि मित्राणि को देश को व्ययागमो।
कस्याह का च मे शक्तिरिति चिन्त्य मुहुर्मुहु ॥१६॥

यह कैसा समय है ? मित्र कौन है ? यह कैसा देश है ? इस समय मेरी आय क्या है ? खर्च क्या है ? मैं किसके अधीन हू ? मुझमे कितनी शक्ति है ? इन बातो को बार बार सोचते रहना चाहिए।

अनभ्यासे विष शास्त्रमजीर्णे भोजन विषम्।
दरिद्रस्य विष गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम ॥१७॥

बिना अभ्यास के शास्त्र विष जैसा लगता है। बिना पचा भोजन विष समान हो जाता है। दरिद्रो का सभा और बूढे पुरुषो को युवती विष समान है।

अध्वा जरा मनुष्याणा वाजिना बन्धन जरा।
अमथुन जरा स्त्रीणा वस्त्राणामातप जरा ॥१८॥

मनुष्यो का मार्ग चलना बुढापा है, घोडे को बधन बुढापा है, स्त्रियो को मैथुन का अभाव बुढापा है, वस्त्रो को धूप बुढापा है।

एकोपि गुणवान पुत्रो निर्गुणश्च शतवरम।
एकश्चन्द्र तमो हन्ति न च तारा सहस्रश ॥१९॥

एक ही गुणी पुत्र सैकडो गुणहीनो से श्रेष्ठ है। अकेला चद्रमा अधकार का नाश कर देता है जिसे हजारो तारे दूर नहीं कर सकते।

अध्याय पाच

गुरुरग्निर्द्विजतीना वर्णाना ब्राह्मणो गुरु ।
पतिरेव गुरु स्त्रीणा सर्वस्याभ्यागतो गुरु ॥१॥

अग्नि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के गुरु हैं। ब्राह्मण चारो वर्णों के गुरु हैं। स्त्री का गुरु उसका पति है और अतिथि सपूर्ण ससार का गुरु है।

मूर्खाणा पण्डिता द्वेष्या अधनाना महाधना ।
वाराङ्गना कुलीनाना सुभगाना च दुर्भगा ॥२॥

मूर्ख पडितो से द्वेष रखते है। दरिद्र, धनिको से, वेश्या कुलीन स्त्रिया से, और विधवा सुहागिन से सहज ही मे द्वेष रखती हैं।

यथा चतुर्भि कनक परीक्ष्यते
निघर्षण च्छेदन तापताडन ॥
तथा चतुर्भि पुरुष परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥३॥

जसे घिसने, रगडने, काटने, तपाने, पीटने से स्वर्ण की परीक्षा होती है ठीक उसी प्रकार त्याग, शील, गुण व आचार इन चार रीतियो से पुरुष की परीक्षा हो जाती है।

आलस्योपहता विद्या परहस्त गत धनम् ।
अल्प बीज हत क्षेत्र हत स यमनायकम् ॥४॥

आलस्य से विद्या, अन्य के हाथ मे जाने से धन, बीज वपन की कमी से खेत व सेनापति के अभाव मे सेना—ये सभी नष्ट हो जाते हैं।

यावद् भयेन भेतव्य यावद भयमनागतम ।
आगत तु भय वीक्ष्य प्रहतव्यमशकया ॥५॥

भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक वह तुम्हारे पास नही आ जाए । और भय जब पास आ ही जाए तो डरो नही अपितु उसे निर्भीक भाव से दूर हटाने का प्रयास करो ।

निस्पृहो नाधिकारी स्यान्ना कामी मण्डनप्रिय ।
नो विदग्ध प्रिय ब्रूयात् स्पष्ट वक्ता न वचक ॥६॥

निस्पृह व्यक्ति किसी विषय का अधिकारी नही हो सकता। वासनाशून्य शरीर की शोभा करने वाली वस्तुओ से प्रीति नहा रख सकता । विद्वान मधुर भाषण नही कर सकता। अत साफ साफ कहने वाला कपटी नही हो सकता ।

एकोदरसमुद्भूता एक नक्षत्र जातका ।
न भवन्ति समा शीले यथा बदरिकण्टका ॥ ॥

एक ही पेट से व एक ही नक्षत्र मे उत्पन्न होने म किसी का शील एक-सा नही हो सकता। उदाहरणार्थ बेर व काट का देख लें ।

अभ्यासाद्धायते विद्या कुल शीलेन धार्यते ।
गुण न ज्ञायते त्वार्य कोपो नत्रेण गम्यते ॥८॥

अभ्यास से विद्या का, सुशीलता से वश का, गुण से भले मनुष्य का और आखो से क्रोध का पता लगता है ।

वृथा वृष्टि समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम ।
वृथा दान धनाढयेषु वृथा दीपो दिवापि च ॥६॥

समुद्र मे वर्षा, भोजन से तृप्त हुए को भोजन, धनी को दान देना व दिन म दीपक जलाना व्यर्थ है ।

जन्म मृत्युनियत्येको भनक्त्येक शुभाशुभम ।
नरकेषु पतत्येक एको याति परां गतिम ॥१०॥

ससार के मनुष्यो मे निश्चय एक पुरुष जन्म मरण पाता है।

एक ही सुख दुःख भोगता है एक ही नरक मे पडता है और एक ही मोक्ष को प्राप्त होता है।

नास्ति मेघ सम तोय नास्ति चात्मसम बलम ।
नास्ति चक्षुसम तेजो नास्ति चान्नसम प्रियम ॥११॥

मेघ जल के समान अन्य कोई उत्तम जल नही है। स्वबल के समान किसी अन्य का बल नही होता है। नेत्र तेज के समान अन्य कोई तेज नही है और अन्न के समान अन्य कोई वस्तु प्रिय नही होती है।

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुना रक्ष्यते भूप सत्स्त्रिया रक्षते गृहम ॥१२॥

धन से धर्म की योग से विद्या की, कोमलता से राजा की और अच्छी स्त्री से घर की रक्षा होती है।

तृण ब्रह्मविद स्वर्ग तृण शूरस्य जीवनम ।
जिताक्षस्य तृण नारी निस्पृहस्य तृण जगत ॥१३॥

ब्रह्मज्ञानी को स्वर्ग, बहादुर को जीवन तृण के समान है। इन्द्रिय वश कर्त्ता को स्त्री तृण के तुल्य जान पडती है, निस्पृह को जगत तृण समान है।

नास्ति कामसमो व्याधि नास्ति मोहसमो रिपु ।
नास्ति कोपसमो वह्नि नास्ति ज्ञानात्पर सुखम ॥१४॥

काम के समान और कोई रोग नही। अज्ञान के समान अन्य दुश्मन नही है। क्रोध के समान अन्य आग नही और ज्ञान से बढकर और कोई सुख नही है।

विद्या मित्र प्रवासेषु भार्या मित्र गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषध मित्र धर्मो मित्र मृतस्य च ॥१५॥

विदेश मे मित्र विद्या है। गृह मे स्त्री ही मित्र है। रोगी का मित्र औषधि है और धर्म मरे हुए व्यक्ति का मित्र है।

दारिद्रय नाशन दान शील दुर्गति नाशनम।
अज्ञान नाशिनी प्रज्ञा भावना भय नाशिनी ॥१६॥

दान दरिद्रता को नष्ट करता है। शील सब दुखों को दूर कर देता है। बुद्धि अज्ञान का नाश कर देती है भावना भय का नाश करती है।

अधना धनमिच्छन्ति वाच चैव चतुष्पद।
मानवा स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवता ॥१७॥

निर्धन धन चाहते है। पशु वाणी चाहते हैं। मनुष्य स्वर्ग की कामना करते हैं और देवता मुक्ति की इच्छा करते हैं।

अन्यथा वेदपाण्डित्य शास्त्रमाचारमन्यथा।
अन्यथा वदत शांतलोका क्लिश्यन्ति चान्यथा ॥१८॥

वेद को, पाण्डित्य को, शास्त्र व सदाचार का तथा शांत मनुष्य को जो वदनाम करते ह या करना चाहते ह वे व्यर्थ कष्ट करते है।

राजपत्नी गुरो पत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नी माता स्वमाता च पचैता मातर स्मृत ॥१९॥

राजा की पत्नी, गुरु तथा मित्र की पत्नी, सासु व स्वमाता उक्त पाच माताए कहलाती है।

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रवि।
सत्येन वाति वायुश्च सर्व सत्य प्रतिष्ठितम ॥२०॥

सत्य से पृथ्वी स्थायी है। सत्य मे ही सूर्य तपता है। सत्य के वल पर वायु बहती है। सब कुछ सत्य पर स्थिर है।

जनिता चोपनेता च यस्तु विद्या प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पचैता पितर स्मृता ॥२१॥

ससार मे जन्मदाता, सस्कार दाता, गुरु, अन्नदाता, भय से रक्षक, ये पाच पिता होते है।

/ ॥

नराणा नापितो धूर्त पक्षिणा चैव वायस ।
चतुष्पदा शृगालस्तु स्त्रीणा धूर्ता च मालिनी ।।२२।।

पुरुषो मे नाई, पक्षियो मे कौआ, चौपायो मे गीदड व स्त्रियो मे मालिन धूर्ता होती है ।

चला लक्ष्मीश्चला प्राणाश्चले जीवित मदिरे ।
चलाचले च ससारे धम एको हि निश्चल ।।२३।।

लक्ष्मी चचला हे । प्राण, जीवन, घर सभी चलायमान है । यह निश्चित है कि इस अचल ससार मे केवल धर्म ही अटल, स्थिर व अचल है ।

अध्याय छ

श्रुत्वा धर्म विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम् ।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात ॥१॥

मनुष्य सुनकर ही स्वधर्म को जानता है और सुनकर ही दुर्बुद्धि को त्यागता है। सुनकर ही ज्ञान की प्राप्ति करता है और सुनकर ही मोक्षपद प्राप्त करता है।

काल पचति भूतानि काल सहरते प्रजा ।
काल सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रम ॥२॥

काल ही है जो सभी प्राणियो को खा लेता है। काल ही है जो सब प्रजा का सहार कर देता है। लोगो के सो जान पर भी वह जागता रहता है। काल को कोई टाल नही सक्ता है।

भस्मना शुध्यते कास्य ताम्रमम्लेन शुध्यति ।
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति ॥३॥

राख से मलने पर कास्य पात्र साफ होता है और इमली की खटाई से ताम्र पात्र साफ होता है। स्त्री रजस्वला होने पर शुद्ध होती है और नदी धारा के वेग से शुद्ध हो जाती है।

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादश ।
सहायास्तावशा एव यादृशी भवितव्यता ॥४॥

जैसा होनहार होता है तदनुरूप ही बुद्धि हो जाती है। वैसा ही उपाय और वैसे ही बानक बन जाते हैं।

भ्रमन सम्पूज्यते राजा भ्रमन सम्पूज्यते द्विज ।
भ्रमन सम्पूज्यते योगी स्त्री भ्रमती विनश्यति ॥५॥

भ्रमण करने वाला राजा पूजा जाता है। भ्रमण करता हुआ ब्राह्मण भी पूजा जाता है। योगी भी भ्रमण करता ही पूजा जाता

है और स्त्री भ्रमण वाली नष्ट हो जाती है।

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बाधवा ।
यस्यार्थ स पुमाल्लोके यस्यार्थ स च पडित ॥६॥

जिसके पास धन है उसके बहुत सारे मित्र ह। उसके अनेक वाधव हैं। वही ससार मे श्रेष्ठ पुरुष है और जिसके पास धन है वही श्रेष्ठ पडित है।

पक्षिणा काक चाण्डाल पशूना चैव कुक्कुर ।
मुनीना पाप चाण्डाल सर्वेषु चाण्डाल निन्दक ॥७॥

कौआ पक्षियो मे चाडाल है और कुत्ता पशुओ मे चाडाल है। पाप मुनियो मे चाडाल है तो निंदा करने वाला सबमे बडा चाडाल होता है।

नव पश्यति जन्माध कामान्धो नैव पश्यति ।
मदोन्मत्ता न पश्यति अर्थी दोष न पश्यति ॥८॥

न तो जन्माध कुछ देख पाता है और न ही कामाध कुछ देख पाता है। उन्मत्त पुरुष भी कुछ नही देख पाता है। उसी प्रकार स्वार्थी पुरुष किसी बात मे कोई दोष नही देख पाता है।

कुराज राज्येन कुत प्रजा सुखम
कुमित्र मित्रेण कुतोऽभिनिवृति ।
कुदार दारैश्च कुतो गृहे रति
कुशिष्यमध्यापयत कुतो यश ॥९॥

बुरे राजा के राज्य मे प्रजा भला किस प्रकार सुख रह सकती है? बुरे मित्र से भला आनद कसे प्राप्त हो सकता है? बुरी स्त्री से घर अच्छा कैसे लग सकता है? बुरे शिष्य को पढाने से यश कैसे प्राप्त हो सकता है?

वर न राज्य न कुराज राज्य
वर न मित्र न कुमित्र मित्रम ।

यर न निष्यो न कुनिष्य निष्यो
यर न दारा कुदार दारा ॥१०॥

राजा न हो तो अच्छा है परतु बुरा राजा होना अच्छा नही है। मित्र न हो तो अच्छा है परन्तु कुमित्र का होना ठीक नही है। निष्य न हो ता अच्छा है परनु निदित शिष्य का होना ठीक नही है। स्त्री न हो ता अच्छा पर बुरी स्त्री होना अच्छा नही है।

स्वय कम करोत्यात्मा स्वय तत्फलमश्नुते।
स्वय भ्रमति ससारे स्वय तस्माद्विमुच्यते ॥११॥

जीव स्वय ही तो कम करता है और उसके शुभाशुभ का फल भी वह स्वय ही भोगता है। वह स्वय ससार मे चक्कर खाता है और समय पाकर स्वय उससे भी छुटकारा भी पा जाता है।

सिहादेक बकादेक निक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात।
वायासात्पच निक्षच्च पट श्वुस्त्रीणि गदभात् ॥१२॥

सिह से एक, बगले स एक, मुर्गे से चार, कौए से पाच, कुत्ते से छ और गधे म तीन गुण ग्रहण करने चाहिए।

राजा राष्ट्रकृत पाप राज्ञ पाप पुरोहित।
भर्ता च स्त्रीकृत पाप शिष्य पाप गुरुस्तथा ॥१३॥

राजा अपने राज्य मे किए गए पाप को और पुरोहित राजा के किए हुए पाप को सदव भोगता है। पति अपनी स्त्री के किए पाप को भोगता है, गुरु अपने शिष्य द्वारा किए गए पाप को भोगता है।

ऋणकर्ता पिता शत्रु माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रु पुत्र शत्रु न पडित ॥१४॥

ऋण लेने वाला पिता, व्यभिचारिणी माता, सुदर स्त्री और मूख पुत्र मनुष्य के सदैव शत्रु होते है।

प्रभूत कार्यमपि वा तत्पर प्रकर्तुमिच्छति ।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेक प्रचक्षते ॥१५॥

मनुष्य चाहे कितना ही वडा काय करना क्यो न चाहता हो, उसे चाहिए कि सारी शक्ति लगाकर वह काय करे। यह गुण उसे सिंह से लेना चाहिए।

लब्धमर्थेन गृह्णीयात्स्तब्धमजलिकमणा ।
मूर्खंश्छ दानुरोधेन यथाथवादेन पडितम ॥१६॥

धन से लोभी को, हाथ जोडकर अहकारी को, सदुपदेश से मूर्ख को, सत्य से पडित को वश मे करना चाहिए।

इन्द्रयाणि च सयम्य वकवत पडितो नर ।
देशकालबल ज्ञात्वा सव कार्याणि साधयेत ॥१७॥

पडितो को चाहिए कि वह वगुले के समान, इद्रियो को सयमित कर देश, काल व शक्ति अनुसार काय करे।

प्रत्युत्थानञ्च युद्धञ्च सविभागश्च बन्धुषु ।
स्वयनाक्रम्य भोक्त च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात ॥१८॥

ठीक समय से जागना, लडना, बन्धुओ के हिस्से का बटवारा और छीन झपटकर भोजन कर लेना ये चार वाते मुर्गे से सीखे।

गूढ मथुन कारित्व काले काले च सग्रहम ।
अप्रमत्तवचनमविश्वास पच शिक्षेच्च वायसात ॥१९॥

एकात मे मैथुन करना, समय-समय पर सग्रह करना, चौकन्ना रहना और किसी पर विश्वास न करना उक्त पाच वातें कौए से सीखें।

• बह्वशी स्वल्पसन्तुष्ट सुनिद्रो लघु चेतन ।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणा ॥२०॥

बहुत भूखे रहते हुए भी थोडे मे ही सतुष्ट रहना गहरी

निद्रा रहने पर भी झटपट जागना, स्वामिभक्ति और बहादुरी ये छ गुण कुत्ते से सीखे।

सुश्रान्तोऽपि वहेद् भारं शीतोष्णं न पश्यति।
सन्तुष्टश्चरतोनित्यं त्रीणिशिक्षेच्चगर्दभात॥ २१॥

अत्यंत थके हुए होने पर भी बोझ ढोना, शीत और गर्मी का ध्यान न करना, सदा संतोषी होकर विचरना ये तीन बातें गधे से सीखे।

य एतान् विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः।
कार्यावस्थासु सर्वासु विजयः भविष्यति॥२२॥

उपरोक्त इन बीस गुणों को धारण करने वाला मनुष्य सदैव सभी कार्यों में विजयी होगा।

अध्याय सात

अथनाश मनस्ताप गहिणो चारितानि च।
नीच वाक्य चापमान च मतिमान्न प्रकाशयेत ॥१॥

निज उपार्जित धन के नाश का, मन के सताप का, स्त्री के चरित्र का, नीच जन के वचनो का और स्वय के अपमान को मनुष्य को चाहिए कि किसी के समक्ष वह प्रकट न करे।

हस्ती अकुशमात्रेण बाजी हस्तेन ताडयते।
शृगी लकुट हस्तेन खड्गहस्तेन दुजन ॥२॥

हाथी अकुश से, घोडा चाबुक से, सीग वाले पशु डडे से और दुर्जन तलवार से दड पाते हैं।

विप्रयोर्विप्रवह्नेश्च दम्पत्यो स्वामिभृत्ययो।
अतरेण न गन्तव्य हलस्य वृषभस्य च ॥३॥

दो विप्रो के मध्य मे से, ब्राह्मणो व अग्नि के मध्य मे, सेवक व स्वामी के बीच मे से, स्त्री व पुरुप के बीच से तथा हल व बल के बीच से कभी नही निकलना चाहिए।

स तोष त्रिषु कर्त्तव्य स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चव न कर्त्तव्याऽध्ययने जपदानयो ॥४॥

तीन बातो मे सदा सतोष करना चाहिए। ये तीन बाते हैं—स्व पत्नी, भोजन और धन। ठीक उसी प्रकार तीन बातो में कभी सतोष नही करना चाहिए। ये तीन बाते है
तप और दान।

हन्ति हस्तसहस्रेण शतहस्तेन वाजिन ।
शृङ्गिणो दशहस्तेन देश त्यागेन दुजन ॥५॥

हाथी को हजार हाथ, घोडे को सौ हाथ, सीग वाले को दस हाथ और दुजन को देश त्याग करके छोड देना चाहिए।

सन्तोषामततृप्तानां यत्सुख शान्ति रेव च।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चतश्च धावताम ॥६॥

सतोष रूपी अमत से तृप्त मनुष्यो को जो सुख और शाति प्राप्त होती है, वह धन के लाभ से इधर-उधर मारे मारे फिरने वालो को भला कसे प्राप्त हो सकती है ?

पादाभ्या न स्पशेदग्नि गुरु ब्राह्मणमेव च।
नय गाव कुमारीं च न वृद्ध न शिशु तथा ॥७॥

अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, कुआरी कन्या का, वद्ध और बालक को पैरो से नही छूना चाहिए।

धनधान्य प्रयोगेषु विद्यां सग्रहेषु च।
आहारे व्यवहारे च त्यक्त लज्ज सुखी भवेत ॥८॥

अन्न और धन-धान्य के लेन देन मे, विद्या के सग्रह मे, आहार व व्यवहार करने मे जो मनुष्य लज्जा नही करता वह सुखी होता है।

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते।
साधव परसम्पत्तौ खल परविपत्तिषु ॥९॥

भोजन प्राप्त होने पर ब्राह्मण, मेघ गजन करने पर मोर, दूसरो के समद्ध होने पर सज्जन और दूसरो पर विपत्ति आने पर दुजन प्रसन्न होते है।

यत्रोदकस्तत्र वसन्ति हसा
स्तथव शुष्क परिवजयन्ति।

न हसतुल्येन नरेण भाव्यम
पुनस्त्यज त पुनराश्रय त ॥१०॥

हस वही वसते है जहा जल होता है। सूखे तालाब को वे छोड दिया करते हें और वार-वार वसते है, मनुष्य को हस के समान नहीं होना चाहिए।

अनुलोमेन बलिन प्रतिलोमेन दुर्जनम।
आत्मतुल्यबल शत्रु विनयेन बलेन वा ॥११॥

अपने मे प्रबल शत्रु को उसके अनुकूल चलकर, दुष्ट शत्रु को उसके प्रतिकूल चलकर और समबली शत्रु को विनय व बल से नीचा दिखाना चाहिए।

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके
चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे।
दानप्रसगो मधुरा च वाणी
देवार्चन ब्राह्मण तर्पण च ॥१२॥

ससार म आन पर जिसके शरीर मे निम्न चार चिह्न पाए जाते हैं—दानमय प्रवृत्ति, मधुर भाषण, देवार्चन, ब्राह्मणो को तृप्त करना उन्ह समझना चाहिए कि वे अपने पुण्य प्रभाव से स्वर्गवासी मृत्युलोक मे जन्म लिए हैं।

यस्यार्थ स्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवा।
यस्यार्थ स पुमाल्लोके यस्यार्थ स च जीवति ॥१३॥

मित्र उसी के होते ह जिनके पास धन होता है। बधुजन भी उसी के होते हैं जिनके पास धन होता है। जिनके पास धन है वही मनुष्य जीवित है।

उपार्जितानां वित्ताना त्याग एव हि रक्षणम।
तडागोदर सस्थानां परिवाह इवाम्भसाम ॥१४॥

उपार्जित धन का खर्च करना ही रक्षण है। जिस प्रकार नए जल के आने पर तालाब के अन्दर के जल को निकालना ही

श्रेयस्कर होता है।

नात्यन्त सरलेन भाव्य गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपा ॥१५॥

आवश्यकता से अधिक सीधा स्वभाव भी ठीक नहीं है। जंगल में जाकर देखें तो पायेंगे कि सीधे वृक्ष ही काट जाते हैं और टेढ़े खड़े रहते हैं।

अत्यन्त लेप कटुता च वाणी
दरिद्रता च स्वजनेषु वरम।
नीच प्रसग कुल हीन सेवा
चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम ॥१६॥

नरकवासियों के देह में अत्यन्त क्रोध, कटु वचन, दरिद्रता वाणी, अपनों में शत्रुता, नीच जनों का सत्संग, कुलहीन की सेवा आदि चिह्न होते हैं।

बाहुवीर्य बल राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मवित बली।
रूप यौवन माधुर्य स्त्रीणां बलममुत्तमम ॥१७॥

राजा में अपने बाहु का बल होता है। ब्रह्मज्ञानी वेदपाठी ब्राह्मण बलवान होता है। तरुणता, सौंदर्य और मधुरता स्त्रियों में उत्तम बल होता है।

गम्येत यदि मृगेन्द्रमन्दिरे च
लभ्यते करिकपोल मौक्तिकम।
जम्बुकाश्रयगत च प्राप्यते
वत्स पुच्छ, खरचर्म खण्डनम ॥१८॥

यदि कोई सिंह की गुफा में जा पड़े तो उसे हाथी के कपाल का मोती प्राप्त होता है। यदि वही सियार की माद में चला जाए तो बछड़े की पूंछ और गधे के चमड़े का टुकड़ा प्राप्त होता है।

पुष्पे गध तिले तल काष्ठे वह्नि पयो घृतम ।
इक्षौ गुड तथा देहे पश्याऽऽत्मान विवेकत ॥१६॥

ज्यो फूल मे गध, तिल मे तेल, लकडी मे आग, दूध मे घी, ईख मे गुड होता है उसी प्रकार विचार करके शरीर मे आत्मा को पहचानो ।

श्वान पुच्छमिव व्यथ जीवित विद्याया बिना ।
न गुह्य गोपने शक्त न च दश निवारणे ॥२०॥

कुत्ते के पूछ के समान विद्या के अभाव मे जीना व्यथ है कुत्ते की पूछ न तो गोप्य इद्रियो को ढक सकती है और न काटने वाले जीवादि को उडा ही सकती है।

वाचा शौच च मनस शौचमिद्रियनिग्रह ।
सवभूत दया शौचमेतच्छौच परमार्थिनाम ॥२१॥

सबसे बडी पवित्रता है—शुद्ध वाणी, शुद्ध मन, इन्द्रियो पर सयम, सभी प्राणियो पर दया तथा सबकी भलाई ।

अध्याय आठ

अधमा धनमिच्छन्ति धन मान च मध्यमा ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम ॥१॥

अधम प्राणी धन चाहते ह। मध्यम प्राणी धन और म
दोनो चाहते है पर उत्तम प्राणी मान ही चाहते हैं। महात्मा
का धन मान ही है।

दीपो भक्षयत ध्वान्त कज्जल च प्रसूयते।
यदन्न भक्षयते नित्य जायते तादृशी प्रजा।२॥

दीपक अधकार को खाता है पर काजल को जन्म देता
यह सत्य ही है कि जो जसा अन्न खाता है उसकी सतति व
ही होती है।

इक्षुराप पयोमूल ताम्बूल फलमौषधम।
भक्षयित्वापि कर्तव्या स्नान दानादिका क्रिया ॥३॥

ऊख, जल, दूध, पान, फल और औषधि इन वस्तुओं
भोजन करने पर भी स्नान दानादि क्रिया कर सकते हैं।

वित्त देहि गुणान्वितेषु मतिमान्ना यत्र देहि क्वचित।
प्राप्त वारिनिधेर्जल धनमुचां माधुर्य युक्त सदा॥
जीव स्थावर जगमाश्चसकला सजीव्य भूमण्डलम।
नय पश्यतद्व कोटि गुणित गच्छन्तमम्भोनिधिम ॥४॥

हे मतिमान्! गुणीजन को धन दो औरो को कभी मत दं
जल समुद्र से मेघ के मुख से प्राप्त होकर सदा मधु हो जात
पृथ्वी पर चराचर प्राणियो को जीवित कर फिर वही को

पुत्र होकर इसी समुद्र में चला जाता है।

> हत ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः।
> हतं निनायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ॥५॥

वह ज्ञान व्यर्थ है जिसके अनुसार आचरण न हो और उस मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ है कि जिसे ज्ञान प्राप्त न हो। जिस सेना का कोई सेनापति न हो वह सेना व्यर्थ है और जिनके पति न हो वे स्त्रियां व्यर्थ हैं।

> चाण्डालानां सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
> एकोहि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः ॥६॥

ऐसा तत्त्वदर्शियों ने कहा है कि हजार चांडालों के समान एक यवन होता है। यवन से बढ़कर नीच दूसरा कोई नहीं है।

> तैलाभ्यंगे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि।
> तावद्भवति चाण्डालो यावत्स्नानं न समाचरेत् ॥७॥

तेल लगाने पर, चिता का धुआं लगने पर, स्त्री प्रसंग पर, बाल कटवाने पर मनुष्य जब तक स्नान नहीं कर लेता तब तक चांडाल रहता है।

> न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये।
> भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥८॥

देवता न तो लकड़ी में है न पत्थर में, न मिट्टी की मूर्ति में है। देवता तो भावना में भाव में विराजमान रहते हैं अतः भाव ही सबका कारण है।

> वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्तगतं धनम्।
> भोजनं च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ॥९॥

वृद्धावस्था मे स्त्री का मरना, निजी धन का बधुओ के हाथों मे चले जाना व पराधीन जीविका, ये सभी मनुष्य के भाग्य की बात है।

> अजीर्णे भेषज वारि जीर्णे तन बलप्रदम।
> भोजने चामृत वारि भोजनान्ते विष प्रदम् ॥१०॥

भोजन न पचने पर जल औषधि के समान है। पच जाने पर वह बल प्रदान करता है। भोजन करते समय वह अमत है और भोजनात मे वह विष का क'म करता है।

> अग्निहोत्र बिना वेदा न च दान बिना क्रिया।
> न भावेन बिना सिद्धिस्तस्माद भावो हि कारणम ॥११॥

बिना अग्निहोत्र के वेदपाठ व्यथ है। दानाभाव मे यज्ञादि कर्म व्यथ है। भावाभाव मे सिद्धि प्राप्त न ी होती अत भाव ही प्रधान है।

> काष्ठपाषाणधातूना कृत्वा भावेन सेवनम।
> श्रद्धया च तथा सिद्धि स्तस्य विष्णो प्रसादत ॥१२॥

काष्ठ, पाषाण तथा धातु की भी श्रद्धापूवक सेवा करने और भगवत्कृपा से सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

> शा ति तुल्य तपो नास्ति न स तोषात्पर सुखम।
> न तृष्णाया परोव्याधिन च धर्मो दयापर ॥१३॥

शान्ति के वरावर और कोई तप नही है। स तोष के समान अ य कोई सुख नही है। तृष्णा से वढकर अ य व्याधि नही है तथ दया से वढकर कोई अन्य धम नही है।

> शुद्ध भूमिगत तोय शुद्धा नारी पतिव्रता।
> शुचि क्षेमकरो राजा सतोषी ब्राह्मण शुचि ॥१४॥

भूमिगत जल पतिव्रता स्त्री, कल्याणकारी राजा व सतोषी द्विज शुद्ध माने ज.ते हैं।

> विद्वान प्रशस्यत लोके विद्वान् सवत्र गौरवम् ।
> विद्यया लभते सव विद्या सवत्र पूज्यते ॥१५॥

ससार मे पूजा विद्वान् की ही होती है। वही सव स्थानो पर आदर-मान पाता है। विद्या से ही सव कुछ मिलता है। विद्या की ही सव स्थानो मे पूजा होती है।

> क्रोधो ववस्वतो राजा तृष्णा वतरणी नदी ।
> विद्या कामदुहा धनु स तोषो न दन धनम ॥१६॥

क्रोध यम है। तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु है और सतोष नदन वन है।

> रूप यौवन सम्पन्ना विशाल कुल सम्भवा ।
> विद्याहीना न शोभन्ते निग धा इव किंशुका ॥१७॥

विद्याविहीन पुरुष को सौंदर्य तथा यौवन, वडे कुल मे भी उत्पन्न होने पर वसे ही शोभा नही देते जैसे विना गध के टेसू का फूल।

> गुणो भूषयते रूप शील भूषयते कुलम ।
> सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम ॥१८॥

रूप को गुण ही सुशोभित करता है। शील कुल को, विद्या सिद्धि को तथा धन को भोग सुशोभित करता है।

> अस तुष्टा द्विजा नष्टा स तुष्टाश्च महीभृत ।
> सलज्जा गणिका नष्टा निलज्जाश्च कुलागना ॥१९॥

असतोषी ब्राह्मण, सतोषी राजा, लज्जालु वेश्या, लज्जाहीन

कुलीन स्त्री विनिष्ट हो जाते है।

निगुणस्य हत रूप दु शीतस्य हत कुलम।
असिद्धस्य हता विद्या अभोगेन हत धनम ॥२०॥

गुण रहित की सुदरता व्यथ है। शीलरहित का कुल नष्ट होता है। विना सिद्धि के विद्या व्यथ है और भोग के विना धन व्यथ है।

कि कुलेन विशालेन विद्याहीन च दहिनाम।
दुष्कुल चापि विदुषो देवरपि हि पूज्यते ॥२१॥

विद्याविहीन प्राणी उच्चकुल मे भी जन्म ले ले तो क्या लाभ ? यदि विद्वान् (बुद्धिमान) बुरे कुल मे जन्म ले ले तो क्या हानि है ? देवता भी उसकी पूजा करते है। कहने का तात्पय यह है कि विद्वान् बुरे कुल मे जन्म लेकर भी पूज्य एव प्रतिष्ठित हो सकता हैं पर विद्याविहीन ऊचे कुल मे पैदा होकर भी यश और प्रतिष्ठा प्राप्त नही कर सकता।

मासभक्ष्य सुरापान मूर्खश्छास्त्र वजित।
पशुभि पुरुषकारर्भाराक्रा ता स्ति मेदिनी ॥२२॥

मासाहारी, शराबी व निरक्षर मूख इन मानव रूप धारी पशुओ से पथ्वी बोझ मे दबी जा रही है।

अन्नहीन दहेद्राष्ट्र म त्रहीनश्च ऋत्विज।
यजमान दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपु ॥२३॥

राजा को अन्नहीनता, ऋत्विज को मन्त्रहीनता, यजमान को दानहीनता रूपी शत्रु नष्ट करता है। इस कारण यज्ञ समान अन्य कोई नही है।

अध्याय नौ

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज ।
क्षमार्जवदया शौच सत्य पीयूषवत्पिब ॥१॥

हे भाई ! तुम यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष के समान समझकर उन्हे त्याग दो और क्षमा, दया, सरलता, पवित्रता तथा सच्चाई का अमृत के समान पान करो ।

गन्ध सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे-
नाऽकारि पुष्प खलु चन्दनस्य ।
विद्वान धनी नृपति दीर्घजीवी
धात पुरोकोऽपि न बुद्धिदोऽ भूत ॥२॥

स्वर्ण मे गन्ध, ईख मे फल, चदन मे पुष्प, विद्वान् धनी, दीर्घ जीवी राजा इन्हे विधाता ने नही बनाया । क्या ब्रह्मा को पहले किसी ने सलाह नही दी ?

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमा ।
ते एव विलय यान्ति वल्मीकोदर सर्पवत ॥३॥

जो व्यक्ति परस्पर मन के भेद की बात दूसरो को बतला देते हैं वे नर उसी प्रकार नष्ट हो जाते है जिस प्रकार बाबी के अन्दर का साप ।

सर्वौषधीनाममृत प्रधानम
सर्वेषु सौख्येष्वशन प्रधानम ।
सर्वेन्द्रियाणा नयन प्रधानम
सर्वेषु गात्रेषु शिर प्रधानम ॥४॥

सब औषधियो मे अमृत गुडुच अर्थात् गिलोय प्रधान है। सब सुखो मे भोजन प्रधान है। सब इद्रियो मे नेत्र प्रधान है और सब अगो मे मस्तक की प्रधानता है।

अर्थाधीनश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्न भोजिन ।
ते द्विजा किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगा ॥५॥

धन के निमित्त वेद पढाने वाले, शूद्र का अन्न खाने वाले ब्राह्मण विष रहित सर्प समान क्या कर सकते हैं ? अर्थात् व्यर्थ हैं।

विद्यार्थी सेवक, पान्थ क्षुधार्तो भयकातर ।
भाण्डारी च प्रतिहारी च सप्त सुप्तान प्रबोधयेत ॥६॥

विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूख से आतुर, भय से कातर भडारी, द्वारपाल इन सात सोए हुओ को जगा दिया जाना चाहिए।

अहि नृप च शार्दूल वरटि बालक तथा ।
परश्वान च मूख च न सप्त सुप्तान बोधयेत ॥७॥

सप, राजा, शेर, बर, बालक, अन्य का कुत्ता व मूर्ख इन सात सोए हुओ को कभी नही जगाना चाहिए।

निर्विषेणापि सर्पेण कत्तव्या महती फणा ।
विषमस्तु च चाप्यस्तु घटाटोपो भयकर ॥८॥

विषहीन सप को भी अपना फन तो बढाना ही चाहिए। विष हो या न हो आडबर भयानक होता है।

दूतो न सचरित खेन चलेच्च वार्ता
- पूर्वं न जल्पितमिद न च सगमोऽस्ति ।

व्योम्नि स्थित रवि नशि ग्रहण प्रशस्त
जानाति यो द्विजवर स कथ न विद्वान ॥९॥

नभ मडल मे न ता दूत ही जा सकता है और न वातचोत ही चल मकती है। न पहले से ही किसी ने कह रखा है न किसी से भेंट ही हो सकती है ग्रौर ऐसी अवस्था म आकाश मे स्थित सूय चद्र के ग्रहण को द्विजवर स्पष्ट जानते हैं वे किसी प्रकार विद्वान् न समझे जाए।

यस्मिन रुष्टे भय नास्ति तुष्टे नैव धनागम ।
निग्रहोऽनुग्रहा नास्ति स रुष्ट कि करिष्यति ॥१०॥

जिनके क्रोध करने पर न भय है, न प्रसन्न होने पर धन का लाभ है, जो न दड, न अनुग्रह ही कर सकता है वह क्रोध करके भी क्या करेगा ? व्यथ है।

प्रातर्द्यूत प्रसगेन मध्याह्ने स्त्री प्रसगात ।
रात्रौ चौर प्रसगेन कालो गच्छति धीमतान ॥११॥

प्रात काल जुआरियो की कथा वार्ता से, दोपहर मे स्त्री प्रसग से, रात्रि मे चोरो की वार्ता मे बुद्धिमानो का समय व्यतीत होता है। कहने का तात्पय यह है कि प्रात महाभारत सुनते है जिसम जुआ, कलह, छल की कथा आती है। दोपहर मे रामायण सुनते हैं जिसमे पुरुप को स्त्री के वशीभूत रहने से दारुण दु ख होता है और परस्त्री पर दृष्टिपात करन से पुन कलम जडमूल के साथ पुरुष का नाश हो जाता है। रात्रि मे चोर का प्रसग सुनते हैं और कृष्ण चरित्र को स्मरण करके इद्रियो को वश मे नही होन क्योकि हजारो स्त्रियों के रहने पर श्री कृष्ण इद्रियो के वश मे नही हुए। इससे इद्रियो के सयम की गतिविधि जाती है।

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्त घष्ट चन्दनम ।
स्वहस्तलिखितस्तोत्र नरस्यापि श्रिय हरेत ॥१२॥

अपने हाथ से गुथी हुई माला, अपने हाथ से घिसा हुआ चदन और अपने हाथ मे लिखा स्तोत्र ये सब इद्र की शोभा भी हर लेते है।

इक्षु दण्डास्तिला शूद्रा कान्ता काचन मेदिनी।
चन्दन दधि ताम्बूल मदन गुण वद्धनम ॥१३॥

ऊख, तिल, शूद्र, सुवण, स्त्री, पृथ्वी, चदन, दही और पान ये सभी वस्तुए जितनी ही मदन की जाती है उतनी ही गुणदायक होती हैं।

दरिद्रता धीरतया विराजते
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजत।
कदन्नता चोष्णतया विराजते
कुरूपता शीलतया विराजते ॥१४॥

धैय मे दरिद्रता, स्वच्छता से मलिनता, सुदर जान पडती है। गम करने मे कुत्सित अन्न मीठा लगता है और शील से कुरूपता भी सुदर लगती है।

अध्याय दस

धनहीनो न हीनश्च धनिक सुनिश्चय ।
विद्यारत्नेन हीनो य स हीन सर्ववस्तुष ॥१॥

धनहीन मनुष्य हीन नही कहा जा सकता वही वास्तव मे धनी है परतु जो विद्यारूपी रत्न से हीन है वह सभी प्रकार से हीन है ।

कवय किन पश्यन्ति किन कुर्वन्ति योषित ।
मद्यपा किन जल्पन्ति किन्न खादन्ति वायसा ॥२॥

कविजन क्या नही देखते हैं ? स्त्री क्या नही कर सकती ? शराबी क्या नही बकते और कौआ क्या नही खाता ?

दृष्टिपूत न्यसेत्पाद वस्त्रपूत पिबेज्जलम ।
शास्त्रपूत वदेद्वाक्य मन पूत समाचरत ॥३॥

आग स भली प्रकार देखभाल कर पर रख, कपडे से छान-कर जल पीए, शास्त्र सम्मत बात कहे और मन को हमेशा पवित्र रखें ।

सुखार्थी चेत्यजेद्विद्या विद्यार्थी चेत्यजेत्सुखम ।
सुखार्थिन कुतो विद्या कुतोविद्यार्थिन सुखम ॥४॥

जो सुख चाहे तो विद्या छोड दे । विद्या चाहे तो सुख छोड दे । सुखार्थी को विद्या कहा और विद्यार्थी को सुख कैसे हो सकता है ?

आप्तद्वेषा भवेन्मत्यु पाद्वेषात्तुधनक्षय ।
राजद्वेषाव भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षय ॥५॥

अपने से वडो स द्वेप करने पर मृत्यु होती है। शत्रु स द्वप करने पर धन का नाश होता है। राजा से द्वप करने पर सव नाश होता है और ब्राह्मण से द्वप करने पर कुल का क्षय हाता है।

रक करोति राजान राजान रकमेव च।
धनिन निधन चव निधन धनिन विधि ॥६॥

ब्रह्मा रक को राजा, राजा को रक, धनी को निधन और निधन को धनी बना देता है।

यस्य नास्ति स्वय प्रज्ञा शास्त्र तस्य करोति किम।
लोचनाभ्या विहीनस्य दपण कि करिष्यति ॥७॥

जिसे स्वय अपनी बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या कर सकता है ? नेत्र विहीन मनुष्य को जैसे दर्पण दिखाने से क्या लाभ है ? अर्थात् व्यर्थ है।

लुब्धाना याचक शत्रु मूर्खाणा बोधको रिपु ।
जारस्त्रीणां पति शत्रु चौराणा चन्द्रमा रिपु ॥८॥

लोभी का शत्रु याचक है। उपदेशक मूख का शत्रु है। पति शत्रु है कुलटा स्त्री का और चोरो का शत्रु चद्रमा है।

दुजन सज्जन कुतमुपायो न हि भूतले।
अपान शतधाधौत न श्रेष्ठमिन्द्रिय भवेत ॥९॥

इस पृथ्वी पर दुजन को सज्जन वनाने के लिए कोई उपाय नही है। सौ सौ बार मलेंद्रिय के धोने पर भी वह शुद्ध नही होती है।

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शील न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥१०॥

वे मनुष्य जिनमे न तो विद्या है न तप है, न दान वृत्ति है न गुण है, न धर्म भाव है, वे सब पृथ्वी पर भार रूप होकर पशु के समान घूमते हैं।

वर वन व्याघ्रगजेन्द्र सेवित
द्रुमालय पत्र फलाम्बुसेवनम् ।
तृणेषु शय्या शतजीर्ण वल्कल
न बन्धु मध्ये धनहीन जीवनम् ॥११॥

जिस वन मे बाघ, बडे-बड हाथी रहते हो उसमे पत्ते तथा फल खाना, जल पीना, घास पर सोना, सौ टुकडे के वल्कलों का वस्त्र पहनना श्रेष्ठ है परतु बधुओ के बीच मे निधन होकर जीना अच्छा नही है।

अन्त सारविहीनानामुपदेशो न जायते ।
मलयाचलससर्गान् वेणुश्चदनायते ॥१२॥

जिनकी अन्तरात्मा मे कुछ तत्त्व नही होता, ऐसे मनुष्यो पर किसी के भी उपदेशो का कुछ भी असर नही पडता। मलयाचल के ससर्ग से और वृक्ष चदन हो जाते है पर बास चदन नही होता।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूल च सन्ध्या
वेदा शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ।
तस्मात् मूल यत्नतो रक्षणीयम्
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥१३॥

अध्याय ग्यारह

दातत्व प्रियवक्तत्व धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन च लभ्यन्ते चत्वार सहजा गुणा ॥१॥

दान शक्ति, मधुर भाषण, धीरता, उचित का ज्ञान ये चारो ही गुण स्वाभाविक ह । ये अभ्यास से नही होने ह ।

न दुजन साधुदशामुपति
बहु प्रकाररपि शिक्ष्यमाण ।
आमूलसक्त पयसा घतेन
न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥२॥

कितना भी सिखलाने पर दुजन को साधुता नही आती है। नीम की जड को घी-दूध से सीचने पर भी मिठास नही आती है।

आत्मवग परित्यज्य परवर्ग समाश्रयेत् ।
स्वयमेव लय याति यथा राज्यमधमत ॥३॥

अपने वग को छोडकर दूसरा के वग मे जाने वाला उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जस राजा अधम से चौपट हो जाता है।

हस्ती स्थूलतनु स चांकुशवश कि हस्तिमात्रोकुश ।
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तम कि दीपमात्र तम ॥
वज्रेणापिहता पतन्ति गिरय कि वज्रमात्र नगा ।
तजो यस्य विराजते स बलवान स्थूलेषु क प्रत्यय ॥४॥

हाथी का स्थूल शरीर होने पर भी अकुश से वश मे रहता

है तो क्या अकुश हाथी के समान है ? दीपक के जलने पर अधकार दूर हो जाता है तो क्या दीपक अधकार के समान है ? इद्र के वज्र से पर्वत गिर जाते हैं तो क्या वज्र पर्वत के समान है ? जिनमे तेज रहता है वही बलवान गिना जाता है। मोटा ताजा होने से क्या होता है।

अन्तर्गतमलोदुष्ट स्तीर्थस्नानशतैरपि।
न शुद्धयति यथा भाण्ड सुरया दाहित च तत ॥५॥

जिसके हृदय मे पाप घर कर चुका है, वह सकडो बार तीर्थ स्थान करके भी शुद्ध नही हो सकता है। जैसे कि मदिरा का पात्र अग्नि मे झुलसाने पर भी पवित्र नहीं होता।

कलौ दश सहस्राणि हरिस्त्यजति मेदिनीम।
तदर्द्ध जाह्नवी तोय तदर्द्ध ग्रामदेवता ॥६॥

कलि के १० हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर विष्णु भगवान पृथ्वी को छोड देते हैं। उसके आधे पर गगाजी जल को, उसके आधे व्यतीत होने पर ग्राम देवता ग्राम छोड देते हैं।

गृहासक्तस्य नो विद्या न दया मासभोजिन ।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्य न स्त्रैणस्य पवित्रता ॥७॥

घर मे आसक्त पुरुषो का विद्या नहीं आती। मासाहारी को दया नही आती, लोभी सत्य नही बोल सकता और कामी मे पवित्रता नही होती।

न वेत्ति यो यस्य गुणे प्रकर्ष
स तु सदा निन्दति मात्र चित्रम।
यथा किराती करिकुम्भलब्धा
मुक्ता परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम ॥८॥

जो जिसके गुण को नही जानता, वह सदा उनकी निंदा करता रहता है जैसे भीलनी हाथी के मस्तक के मुक्ता को

छोडकर गुचिया पहनती है ।

लौकिके कम्मणि रत पशूनां परिपालक ।
वाणिज्य कृपिकर्मा य स विप्रो वश्य उच्यते ।।९।।

जो ब्राह्मण सासारिक कार्यों मे पशुओं का पालन, व्यापार और कृपिकर्ता होता है वह वैश्य कहलाता है ।

यस्तु सवत्सर पूण नित्य मौनेन भुञ्जते ।
युग कोटि सहस्त्रतु स्वर्ग लोके महीय ।।१०।।

जो लोग केवल एक वप तक मौन रहकर भोजन करते हैं वे १० हजार वप तक स्वगवासियो से सम्मानित होकर स्वर्ग मे निवास करने है ।

लाक्षादितलनीलाना कौसुम्भमधु सर्पिषाम ।
विक्रेता मद्यमासाना स विप्र शूद्र उच्यत ।।११।।

लाखादि पदाथ तेल, नील, कुसुम, मधु, घी, मदिरा, मास जो ब्राह्मण वेचता है वह शूद्र कहलाता है ।

काम क्रोध तथा लोभ स्वाद शृगार कौतुकम ।
अतिनिद्रातिसेवा च विद्यार्थी ह्याष्ट वजयेत ।।१२।।

काम, क्रोध, लोभ, स्वाद, शृगार, खेल, तमाशे, अधिक नीद और किसी की अधिक सेवा, विद्यार्थी इन आठ कर्मों को त्याग दे । उक्त आठ वाते अध्ययन मे सदैव वाधक है ।

वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम ।
अच्छेदन निराशक स विप्रो म्लेच्छ उच्यत ।।१३।।

जो ब्राह्मण वावडी, कुआ, तालाव, वाटिका, देवालय आदि के नष्ट करने मे निडर हो वह म्लेच्छ कहलाता है ।

एकाहारेण सन्तुष्ट ' षडकर्मनिरत सदा ।
ऋतुकालेभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते ।।१४।।

जो ब्राह्मण केवल एक समय के भोजन से सतुष्ट हो, सदा

विद्याध्ययनादि छ कर्मों मे लीन रहे, ऋतुकाल मे स्त्री सपर्क करे, ऐसे को द्विज कहना चाहिए।

देव द्रव्य गुरुद्रव्य परदाराभिमर्षणम ।
निर्वाह सवभूतेषु विप्र चाण्डाल उच्यते ॥१५॥

जो ब्राह्मण देवता और गुरु का द्रव्य हरता है और पर स्त्री गमन करता है और सब प्राणियो मे निर्वाह कर लेता है वह चाडाल होता है।

परकाय विह ता च दाम्भिक स्वाय साधक ।
छली द्वेषी मदुक्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ॥१६॥

जो दूसरो का काम विगाडता है, पाखड पूर्ण आचरण करता है, मतलब साधने मे तत्पर रहता है, वल छलादि कम करता है—ऊपर से मीठा पर हृदय से क्रूर रहता है, वह ब्राह्मण मार्जार कहा जाता है।

आकृष्टफलमूलानि वनवासरत सदा ।
कुरतेऽह श्राद्धमपिविप्र स उच्यते ॥१७॥

जो ब्राह्मण केवल बिना जोती भूमि से उत्पन्न फल या मूल को खाकर वनवासी है। प्रतिदिन श्राद्ध करता है वही ऋषि कहलाता है।

देय भोज्य धन सुकतिभिर्नोसचयस्तस्य वै ।
श्रीकणस्यबलेश्चविक्रमपतेरद्यापि कीर्ति स्थिता ॥
अस्माक मधुदान भोग रहित नष्ट चिरात्सचितम ।
निर्वाणादितिनष्टपाद युगल घषस्यमो मक्षिका ॥१८॥

सुकृतिकयो को चाहिए कि भोग, योग, धन, द्रव्य को दान कर दे सचय कभी नही करें। श्री कर्ण, वलि, वीर विक्रमादित्य इन राजाओ की कीर्ति अब तक विद्यमान है। मधुमक्खियो को देखा, मधु की हानि के कारण दोनो पावो को घिसा करती हैं।

अध्याय बारह

सानन्द सदन सुतास्तुसुधिय कांता प्रियालापिनी।
इच्छापूर्तिधनस्वयोषिनिरति स्वाज्ञापरा सेवका ॥
आतिथ्य शिवपूजन प्रतिदिन मिष्टा नपान गृहे।
साघो सगमुपासते च सतत धन्योगृहस्थाश्रम ॥१॥

आनदयुक्त घर हो, पुत्र बुद्धिमान हो, स्त्री मधुरभाषिणी हो, मनमाना धन हो, अपनी स्त्री मे प्रेम हो, आज्ञाकारी सेवक हो। घर मे मीठा अन्न और जल मिलता हो, शिवजी की पूजा होती हो, सबका आतिथ्य होता हो, सदा सज्जनो का सग हो तो ऐसा गृहस्थाश्रम धन्य है।

आर्तेषु विप्रेष दयान्वितश्चे
च्छद्धेण या स्वल्पमुपैतिदानम।
अनन्तपार समुपति दानम
यद्दीयते तन्न लभेद द्विजेभ्य ॥२॥

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक और दयाभाव म दीनो होतो तथा ब्राह्मणो को थोडा सा भी दान दे देता है तो वह उसे अनतगुना होकर उन दीन ब्राह्मणो से नही अपितु ईश्वर के दरबार से मिलता है।

दाक्षिण्य स्वजने दया परजन शाठ्य सदा दुजने
प्रीति साधुजने स्मय खलजने विद्वज्जने चाजवम।
शौर्य शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजन धूतता
इत्थ ये पुरुषा कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थिति ॥३॥

अपने परिवार में उदारता, अन्यो पर दया, दुजनो के प्रति ।।, साधुजनो से प्रेम, मूर्खों से अप्रीति, विद्वानो मे श्रद्धा,

शुश्रूषा में बहादुरी, बड़े लोगों में क्षमा, स्त्री के प्रति अनासक्ति का व्यवहार करना है ऐसे कला में कुशल मनुष्यों की लोक में मर्यादा स्थिर रहती है।

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वत द्रोहिणौ।
नेत्रे साधु विलोक रहिते पादौ न तीर्थं गतौ॥
अन्यायार्जित वित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरो।
रे रे जम्बुक मुञ्चमुञ्च सहसा नीच सुनिंद्य वपु॥४॥

जिनके दोनों हाथ दानविहीन हैं, दोनों कान विद्या श्रवण से पराङ्मुख हैं, नेत्र सज्जनों का दर्शन नहीं करते और पैर तीर्थों का पर्यटन नहीं करते, जो अन्याय अर्जित धन से पेट पालते हैं और गर्व से सिर ऊँचा करके चलते हैं ऐसे मनुष्यों का रूप धारण किए गए ए सियार। तू झटपट अपने उस नीच और निंदनीय शरीर को छोड़ दे।

येषा श्रीमद्यशोदासुतपद कमले नास्ति भक्तिनराणा।
येषा माभीरक या प्रियगुण कथने नानु रक्ता रसना॥
येषा श्रीकृष्ण लीलाललितर सकथा सादरौ नैव कर्णौ।
धिक्ता धिक्ता धिक्ेता कथयति सतत कीतनस्थोमृदंग॥५॥

कीर्तन के समय बजता हुआ मृदंग कहता है कि जिन मनुष्यों को श्रीकृष्ण के चरण कमलों में भक्ति नहीं है। श्री राधा रानी के प्रिय गुणों के कथन में जिनकी रसना अनुरक्त नहीं और श्रीकृष्ण की लीलाओं को सुनने के लिए जिसके कान उत्सुक नहीं हैं ऐसे लोगों को धिक्कार है, धिक्कार है।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्य साधु समागम॥ ॥

साधु लोग तीर्थ रूप होने से ही उनका दर्शन पुण्य है। तीर्थ कुछ समय बाद फल देता है पर साधुओं की संगति शीघ्र ही फल दे देती है।

धर्मे तत्परता मखे मधुरता दाने समुत्साहता
मित्रे ऽ वचकता गुरौ विनयता चित्ते ऽपि गम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघव ॥१५॥

धर्म मे तत्परता, मुख मे मधुरता, दान मे उत्साह, व्यवहार मे निश्चलता, गुरु के प्रति विनम्रता, गुणो मे रसिकता, शास्त्र मे विशेषता, रूप मे सौदय और शिव मे भक्ति है राघव ! यह सब आप ही मे है।

काष्ठ कल्पतरु सुमेररचलश्चिन्तामणि प्रस्तर।
सूयस्तीव्रकर शशिक्षयकर क्षारोहि निरवारिधि॥
कामो नष्ट तनवलि र्दितिसुतो नित्य पशु कामगो।
नैतास्ते तुलयामि भो रघुपते ! कस्योपमा दीयते॥१६॥

कल्प वक्ष काष्ठ है। सुमेरु अचल है। चिन्तामणि पत्थर है। सूय की किरणे तीखी हैं। चन्द्रमा क्षय होता है। समुद्र खारा है। कामदेव देह रहित है। वलि दैत्य है। कामधेनु पशु है। इसलिए इनके साथ तो मैं आपकी तुलना नही कर सकता। तब हे रघुपते ! आपके साथ किसकी उपमा दी जाती है।

विद्या मित्र प्रवासे च भार्या मित्र गृहेषु च।
व्याधितस्यौषध मित्र धर्मो मित्र मृतस्य च॥१७॥

प्रवास मे विद्या हित करती है। घर मे स्त्री हित करती है। रोग ग्रस्त पुरुष का हित औषधि से होता है और धर्म मरे का उपकार करता है।

विनय राजपुत्रेभ्य पडितेभ्य सुभाषितम।
अनत द्यूतकारेभ्य स्त्रीभ्य शिक्षेत कतवम॥ ८॥

राजपुत्र से सुशीलता ग्रहण कर, पडितो से अच्छे मधुर वचन सीख जुआरियो से झूठ और स्त्रियो मे छल साखना चाहिए।

अनालोच्य व्यय कर्ता अनाथ कलहप्रिय ।
आर्त स्त्री सर्व क्षेत्रेषु नर शीघ्र विनश्यति ॥१६॥

बिना सोचे-समझे खच करने वाला, अनाथ, झगडालू और स्व जाति की स्त्रियो से भोग के लिए व्याकुल रहने वाला मनुष्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।

नाहार चिन्तयेत्प्राज्ञो धममेक हि चिंतयेत ।
आहारो पि मनुष्याणां जन्मना सह जायत ॥२०॥

पडित भोजन की चिंता न करे । मात्र धम का काय करने का विचार करता रहे । क्योकि भोजन तो मनुष्य के जन्म के साथ ही उत्पन्न होता है ।

धनधान्य प्रयोगेषु विद्या सग्रहणे तथा
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज सुखी भवेत ॥२१॥

जो मनुष्य धन तथा धान्य के व्यवहार मे, पटन लिखने मे, भोजन मे और लेन देन मे निलज्ज होता है वही सुखी रहता है ।

जल बिन्दु निपातेन क्रमश पूयते घट ।
स हेतु सवविद्याना धमस्य च धनस्य च ॥२२॥

धीरे-धीरे जिस प्रकार जल की एक एक बूद गिरने से घडा भर जाता है उसी प्रकार विद्या, धम और धन का भी सग्रह होता है, इसमे जल्दी न करें ।

वयस परिणामे हि य खल एव स ।
सुपक्वमपि माधुय नोपयातीन्द्रवारुणम ॥२३॥

जो आयु के ढल जाने पर भी खल है वह खल ही बना रहता है । जैसे अत्यत पका हुआ अनार का फल मीठा ही रहता है ।

अध्याय तेरह

मुहुर्तमपि जीवेच्च नर शुक्लेन कर्मणा ।
न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वय विरोधिना ।।१।।

उज्ज्वल कर्म करके मनुष्य एक मुहूर्त भी जीए वह श्रेष्ठ है परन्तु दोनो लोको के विरुद्ध दुष्ट कर्म से कल्प भर भी उसका जीना अच्छा नही है ।

गत शोको न कर्तव्यो भविष्य नव चिन्तयेत ।
वर्तमान कालेन प्रवर्त्त ते विचक्षणा ।।२।।

जो बात बीत गई उसके लिए सोच न कर और न ही आगे होने वाली के लिए चिंता करनी चाहिए । समझदार लोग सामने की बात अर्थात् वर्तमान की बातो का ही विचार करते हैं ।

अनागत विधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ।।३।।

जो मनुष्य भविष्य मे आने वाली विपत्ति के प्रति सचेत रहते हैं, होशियार है और जिसकी बुद्धि समय पर काम कर जाती है वे ही मनुष्य आनद से आगे बढते जाते हैं । इनके विपरीत जो भाग्य मे लिखा होगा सो होगा, यह सोचकर बैठे रह जाते हैं उनका नाश तो अवश्यभावी है ।

आयु कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च ।
पचतानि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिन ।।४।।

आयु कर्म, सपत्ति विद्या और मृत्यु ये पाच चीजें जीव को गर्भावस्था मे ही मिल जाती हैं ।

यस्य स्नेही भय तस्य स्नेहो दु खस्य भाजनम ।
स्नेह मूलानि दु खानि तानि त्यक्त्वा वसेत्सुखम ॥५॥

जिसके हृदय मे प्रीति है उसको भय है। जिसके पास स्नेह है उसको दु ख है। जिसके हृदय मे स्नेह है उसी के पास तरह-तरह के दु ख रहते हैं जो इसे त्याग देता है वह सुख से रहता है।

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवा सत्पुरुषा पिता ।
ज्ञातय स्नान पानाभ्या वाक्य दानेन पडिता ॥६॥

स्वभाव को देखकर ही देवता सत्पुरुष और पिता तीनो प्रसन्न होते है। भाई बधु स्नान और पान से, पडित जन प्रिय भाषण से प्रसन्न होते है।

अहोवत विचित्राणि चारितानि महात्मनाम् ।
लक्ष्मी तृणाय मन्यन्ते तद भरेण नमन्ति च ॥७॥

अहो ! महात्माओ के चरित्र भी विचित्र होते है। वैसे तो ये लक्ष्मी को तिनके की तरह समझते है और जब वह आ ही जाती है तो इसके भार से दबकर नम्र हो जाते हैं।

राज्ञेधमणि धर्मिष्ठा पापे पापा समे समा ।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥८॥

राजा यदि धर्मात्मा है तो प्रजा भी धर्मात्मा, पापी हो तो पापी और सम हो तो सम होती है अर्थात् प्रजा हर प्रकार से राजा का अनुकरण करती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा भी होती है।

जीवन्त मत वन्म ये देहिन धमवर्जितम ।
मतो धर्मेण सयुक्तो दीघजीवी न सशय ॥६॥

धम विमुख प्राणी जीते जी भी मरे हुए के समान है।

धर्मात्मा जीव मरा हुआ भी चिरजीवी ही रहता है।

धर्मार्थकाम मोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य ज म निरथकम ॥१०॥

जिस मनुष्य के पास अथ, धम, काम और मोक्ष इनम से एक भी नहीं है, उसका ज म बकरी क गले के स्तन के समान व्यथ है।

ईप्सित मनस सव यस्य सम्पद्यते सुखम।
दैवायत्त यत सव तस्मात्सन्तोषमाश्रयेत ॥११॥

अपने मन के अनुसार सुख भला किसे प्राप्त होता है? जबकि ससार में सभी कामदेव के अधीन है इसलिए सतोष पर ही भरोसा रखे रहे।

अनवस्थित कायस्य न जने न वने सुखम।
जनो दहति ससर्गाद्वन सग विवजनात ॥१२॥

जिसके कार्य मे स्थिरता नही है, उसको न तो समाज मे सुख है, न वन मे। *समाज उसे ससग मे जलाता है और वन म सग के त्याग से दु खी रहता है।*

ब धाय विषयासग मुक्त्य निर्विषम्मन।
मन एव मनुष्याणा कारण ब ध मोक्षयो ॥१३॥

विषयो मे मन को लगाना ही बधन है और विषयो से मन को हटाना ही मुक्ति है। तात्पय यह है कि मन ही मनुष्यो के बधन और मोक्ष का हेतु है।

यथा खनित्वा खनित्रेण भूतले वारि वि दति।
तथा गुरुगता विद्या शुश्रूषुरधिगच्छति ॥१४॥

जैसे कुदाली से खोदने पर जमीन से जल निकलता है उसी प्रकार गुरु गत विद्या को सेवा से शिष्य प्राप्त करता है।

देहाभिमान गलिते ज्ञानेन परमात्मन ।
यत्र तत्र मनो याति तत्र समाधय ॥१५॥

परमात्मा के ज्ञान से मनुष्य का देहाभिमान गल जाता है तब फिर जहा कही भी उसका मन जाता है ता उसके लिए सवत्र समाधि ही है ।

यथा धनु सहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम ।
तथा यच्च कृत कम कर्तारमनुच्छति ॥१६॥

जैसे हजारो गायो के रहते वछडा अपनी माता के पास ही जाता है ठीक उसी प्रकार जो कर्म किया जाता है वह उमके कता को ही प्राप्त होता है ।

दह्यमाना सुतीव्रेण नाचा परयोग्निना ।
अशक्तास्तत्पद गन्तु ततो निन्दा प्रकुवते ॥१७॥

दुजन दूसरे की यशरूपी अग्नि से जलते रहते ह और उसके पद का पा नहीं सकते, इसलिए उनकी निंदा करन लगत है ।

कर्मायत्त फल पुसा बुद्धि कर्मानुसारिणि ।
तथापि सुधियाचार्या सुविचार्यैव कुवते ॥१८॥

फलाफल मनुष्य को कर्मानुसार ही मिलता है और बुद्धि भी धर्मानुसार मिलती है । फिर भी बुद्धिमान लोग विचार करके ही काम करते है ।

एकाक्षर प्रदातार यो गुरु नाभिवन्दते ।
श्वानयोनि शत भुक्त्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥१९॥

एक अक्षर भी देने वाले गुरु को जो मनुष्य गुरु नहीं मानता वह सौ वार कुत्ते की योनि भोगकर चाडालो म जन्म लेता है।

युगान्ते प्रचलेन्मेरु कल्पान्ते सप्त सागरा ।
साधव प्रतिपन्नार्थान चलन्ति कदाचन ।।२०।।

युगांत होने पर सुमेरु पर्वत डिग जाता है। कल्पांत पर सातों समुद्र चचल हो उठते हैं पर सज्जन स्वीकृत मार्ग से विचलित नहीं होते ।

पृथिव्या त्रीणि रत्नानि अन्नमाप सुभाषितम ।
मूढ पाषाण खण्डेषु रत्नसज्ञा विधीयते ।।२१।।

जल अन्न और प्रिय वचन पृथ्वी पर ये तीन ही रत्न हैं। मूर्खों ने पाषाण के टुकडों का ही रत्न मान लिया है।

अध्याय चौदह

आत्मापराध वृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम ।
दारिद्र्य रोग दु खानि बन्धन व्यसनानि च ॥१॥

मनुष्य को अपने स्व द्वारा पल्लवित अपराध रूपी विष वृक्ष के ये ही फल फलते है—दरिद्रता, रोग, दुख, बधन और व्यसन।

जले तल खल गुह्य पात्रे दान मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्र स्वय याति विस्तारवस्तु शक्तित ॥२॥

जल मे तेल, दुर्ग मे कोई गुप्त वार्ता, सुपात्र मे दान, बुद्धिमान मे शास्त्र ये थोडे होते हुए भी पात्र की शक्ति से अपने आप फल जाते है।

पुनर्वित्तम्पुनमत्र पुनर्भार्या पुनमही ।
एतत्सव पुनलभ्य न शरीर पुन पुन ॥३॥

गया हुआ धन पुन मिल सकता है। रूठे हुए मित्र को पुन प्रसन्न किया जा सकता है। हाथ से निकली स्त्री को पुन लाया जा सकता है और छीन ली गई भूमि भी फिर प्राप्त हो सकती है परतु नष्ट शरीर पुन प्राप्त नही हो सकता है।

बहूना चव सत्वाना समवायो रिपुञ्जय ।
वर्षधाराधरो मेघ स्तृणरपि निवायते ॥४॥

यह निश्चित है कि बहुत सारे लोगो का समूह शत्रुजन को परास्त कर देता है। वेग के साथ वर्षा की धार धरने वाले मेघ को तृण समूह हरा देते है।

धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणां या मति भवेत।
सा सर्वदा तिष्ठेच्चेत्को न मच्येत बन्धनात ॥५॥

कोई धार्मिक आख्यान सुनने पर, श्मशान मे और रोगावस्था मे मनुष्य की जैसी बुद्धि होती है वैसी यदि सदैव रहे तो भला कौन होगा जो मोक्षपद को प्राप्त न कर सके।

यदीच्छसि वशीकर्तु जगदेकेन कर्मणा।
परापवादशस्त्रेभ्यो गा चरन्ती निवारय ॥६॥

जो मात्र एक ही काय से ससार को वश म करना चाहते हैं तो पहल परापवाद रूपी शस्त्र से मनुष्य रूपी गौ को उधर से हटा लो। कहने का तात्पय यह है कि पाच ज्ञानेन्द्रिया—आख, नाक कान जिह्वा, त्वचा, पाच कर्मेन्द्रियो—मुख, हाथ, पाव, लिंग, गुदा, रूप, रस, गन्ध, स्पश पाच ज्ञानेन्द्रियो के विषय इन पद्रह मे मनरूपी गौ का निवारण करना उचित है।

उत्पन्न पश्चात्तापस्य बुद्धिभवति यादशी।
तादशी यदि पूर्वा स्यात्कस्य स्यान्न महोदय ॥७॥

कोई भी बुरा काय करन पर पछताने के समय मनुष्य की जैसी बुद्धि रहती है, वसी यदि पहले ही मे रहे तो भला कौन उन्नति को प्राप्त नही होगा।

अग्निराप स्त्रियो मूर्खा सर्पो राजकुलानि च।
नित्य यत्नेन सेव्यानि सद्य प्राण हराणि षट ॥८॥

अग्नि, जल, मूर्ख सर्प और राजा इनके साथ सावधानी पूर्वक बर्ताव करना चाहिए। ये शीघ्र ही प्राण हरने वाले होते हैं।

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये।
विस्मयो न हि कर्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा ॥९॥

दान, तप, वीरता विज्ञान और नीति इनके विषय मे कभी किसी को विस्मित होना ही नही चाहिए। क्योंकि पृथ्वी मे अनेक रत्न भरे पडे हैं।

स जीवति गुणा यस्य यस्य धम स जीवति।
गुण धम विहीनस्य जीवित निष्प्रयोजनम ॥१०॥

गुणी जन का जीवन सफल है। धर्मात्मा का जीवन साथक है। गुण व धम से हीन परुष का जीवन व्यथ है।

दूरस्थोपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थित।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थापि दूरत ॥११॥

जो मनुष्य जिसके मनस्थन हृदय मे स्थान किए हुए है वह दूर रहकर भी दूर नही है। जो जिसके हृदय मे नही रहता वह समीप रहने पर भी दूर है।

प्रस्ताव सदश वाक्य प्रभाव सदश प्रियम।
आत्मशक्ति समाकोप यो जानाति स पडित ॥१२॥

पडित वही है जो प्रसगानुसार, प्रकृति अनुकूल प्रम, और स्व शक्तिनुसार क्रोध को जानता है।

यस्माच्च प्रियमिच्छेत तस्य ब्रूयात्सदाप्रियम।
व्याधो मृगवध गन्तु गीत गायति सुस्वरम ॥१३॥

किसी को भी चाहने वाला सदा उससे प्रिय बोले जैसे व्याध्र मग को वध के निमित्त मीठे स्वर से गीत गाता है।

अत्यास न विनाशाय दूरस्था न फलप्रदा।
सेव्यता मध्य भागेन राजवृद्ध गुरु स्त्रिय ॥१४॥

राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री इनके अधिक पास म रहने पर नाश होता है। दूर रहने से फलप्रद नही होते, इसलिए इन्हें मध्यम अवस्था से ही वतना चाहिए।

धर्म धन च धान्य च गुरोवचन मौषधम।
सगहीत च कतव्यमन्यथा तु न जीवति ॥१५॥

धम, धन, धान्य, गुरुवचन और औषधि आदि ये सग्रहीत हो तो इनको भली-भाति अपनाए, ऐसा जो नही करता वह जीता भी नही है।

एक एव पदाथस्तु त्रिधा भवति वीक्षति।
कुणप कामिनी मास योगिभि कामिभि श्वभि ॥१६॥

एक स्त्री के शरीर को तीन जीव तीन दृष्टि स देखत ह— योगी उसे बदबूदार मुर्दे के रूप मे देखते ह। कामी कामिनी समझते है और कुत्ता उसे मास पिण्ड जानता है।

त्यज दुजन ससग भज साधु समागमम।
कुरु पुण्यमहोरात्र स्मर नित्यमनित्यत ॥१७॥

ससार अनित्य है इस कारण दुष्ट का साथ छोडकर साधु की सगति स्वीकार करो। दिन-रात पुण्य काम करो और ईश्वर का स्मरण नित्य करते रहा करो।

तावन्मौने न नीयन्ते कोकिलश्चव वायस ।
यावत्सवजानन ददायनी वाक न प्रवतत ॥१८॥

कोयल तब तक चपचाप दिन नही बिता देती जब तक कि वे सब लोगो के मन को आनदित करने वाली वाणी नही बोलती है।

सुसिद्धमौषध धम गहछिद्र च मथुनम।
कुभुक्त कुश्रुत चव मतिमान्न प्रकाशयेत ॥१९॥

बुद्धिमानो को सिद्ध औषधि, धम, स्व निज घर का दोष, मैथुन, दूषित भोजन निदित वचन का प्रकाश नही करना चाहिए।

अध्याय पन्द्रह

यस्य चित्त द्रवीभूत कृपया सर्व जन्तुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा भस्म लेपन ॥१॥

जिसका चित्त दया के वशीभूत होकर द्रवीभूत हो जाता है तो उसे फिर ज्ञान, मोक्ष, जटा धारण तथा भस्म लेपन की क्या आवश्यकता है।

एकमेवाक्षर यस्तु गुरुशिष्य प्रबोधयेत ।
पथिव्या नास्ति तद द्रव्य यद दत्वा चानृणी भवेत ॥२॥

यदि गुरु एक अक्षर भी बोलकर शिष्य को उपदेश दे देता है तो पथ्वी पर कोई ऐसा द्रव्य ही नहीं है जिसे देकर गुरु से उऋण हुआ जा सके।

खलाना कण्टकाना च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपाना मुख भगो वा दूर तैव विसजनम ॥३॥

दुष्टजन और काट दोनो दो ही प्रकार से दबाए जा सकते हैं जूते के उपयोग से या दूर से त्याग करने से।

कुचलिन दन्त मलोपधारिण
बह्वाशिननिष्ठुर भाषिण च ।
सूर्योदये चास्तामिते शयान
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणि ॥४॥

मलिन अर्थात् मैले वस्त्र पहनने वाला, मैले दात रखने वाला, भुक्खड, नीरस वार्तालाप करने वाला और सूर्योदय व सूर्यास्त के समय तक सोने वाला यदि चक्रधारी भगवान विष्णु या चक्रवर्ती सम्राट भी हो तो उसे भी लक्ष्मी त्याग देती है।

५ अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूल च विनश्यति ॥५॥

अन्याय से पैदा किया हुआ धन दस ही वर्ष तक ठहरता है और ग्यारहवे वर्ष मे वह धन समूल नष्ट हो जाता है।

अनन्त शास्त्र बहुलाश्च विद्या,
अल्प च कालो बहुविघ्नता च ।
आसारभूत तदुपासनीय,
हसो यथा क्षीरमिवाम्बु मध्यात ॥६॥

शास्त्र अनत है। विद्याए बहुत है। जीवन काल थोड़ा है और उसमे विघ्न अनेक है। इसलिए जैसे हस जल से दूध को ले लेता है उसी तरह जो सार है उसे ले लेना उचित है।

त्यजन्ति मित्राणि धनविहीन
दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ।
त चार्थवन्त पुनराश्रयन्ते
ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धु ॥७॥

निधन को मित्र, स्त्री, सेवक व बधु जन छोड दिया करते है। फिर धनी हो जाने पर फिर उसी का आश्रय लेते हैं यानी धन ही इस लोक मे बधु है।

मणिलु ठित पादाग्रे काच शिरसि धार्यते ।
क्रय विक्रय वेलाया काच काचो मणिर्मणि ॥८॥

यदि मणि पैर के आगे लोटती हो और काच सिर पर भी रखा हो पर उनके क्रय विक्रय के समय काच काच और मणि मणि ही होती है।

अयुक्त स्वामिनो युक्त युक्त नीचस्य दूषणम ।
अमृत राहवे मृत्यु विष शकर भूषणम ॥९॥

प्रभावशाली व्यक्ति को अयोग्य वस्तु भी योग्य हो जाती है और दुर्जन को योग्य कार्य भी अयोग्य हो जाता है जैसे अमृत से राहु को मत्यु फल मिला और विष शंकर का भूषण हुआ।

दूरागत पथि श्रा त वृथा च गहमागतम।
अनर्चयित्वा यो भुङ्क्ते स व चाण्डाल उच्यते ॥१०॥

जो दूर से आ रहा थका पथिक घर आ जाए उसकी ओर इन अभ्यागतो की सेवा किए विना जो भोजन कर लेता है उसे चाण्डाल कहना चाहिए।

तद भोजन यद द्विज भुक्त शेष
तत्सौहृद यत्क्रियते परस्मिन।
सा प्राज्ञता या न करोति पाप
दम्भ विना य क्रियते स धर्म ॥११॥

वही भोज, भोजन है जो ब्राह्मणों के जीम लेने के वाद वचा हो, वही प्रेम, प्रेम है जो स्वार्थ वश अपने ही लोगो मे न किया जाकर और पर भी किया जाए। समझदारी वही है जिससे कोई पाप न हो सके और धर्म वही है जो दंभ रहित हो।

पठन्ति चतुरो वेदान धर्मशास्त्र ण्यनेकश।
आत्मन नव जानन्ति दर्वी पाकरस यथा ॥१२॥

वैसे ही अनेक लोग चारो वेद और अनेक धर्मशास्त्र पढकर भी अपनी आत्मा को नहीं जानते, जसे करछी पाक म रहकर भी रस को नहीं जानती है।

पीत क्रुद्धेनतातश्चरणतलहतोवल्लभो येन रोषाद।
आबाल्याद्विप्रवर्यै स्ववदनविवरेधार्यते वरिणी मे॥
गेह मे छेदयन्ति प्रतिदवि समुमाकान्त पूजानिमित्त।
तस्मात्खिन्नासदाहद्विज कुलनिलयनाथ युक्तत्यजामि ॥१३॥

लक्ष्मी भगवान से कहती है कि अगस्त्य मुनि ने रुष्ट होकर

मेरे पिता समुद्र को पी लिया। भृगु विप्र ने क्रोध के मारे मेरे पति विष्णु को लात मारी, मेरी बहिन सरस्वती देवी को अपने कंठ में रखे हुए हैं और शिव पूजनार्थ रोज मेरे घर कमल को तोड़ते हैं, उन ब्राह्मणों के घर में सदैव छोटे रखूंगी। मेरे शत्रु ब्राह्मणों ने ही मेरा सर्वनाश किया है।

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णवे।
तरन्त्यधोगता सर्वे उपरिस्थिता पतन्त्यधः ॥१४॥

यह ब्राह्मण रूपी नौका धन्य है जो इस संसार रूपी नौका में उल्टी रीति से चलती है। इसके नीचे (ब्राह्मण से नम्र) रहने वाले नीचे नही गिरते है जो नम्र नही रहते वह नरक में गिरते हैं।

छिन्नोपि चन्दन तरुन जहाति गन्ध
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम।
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चक्षु
क्षीणोपि न त्यजति शील गुणान्कुलीन ॥१५॥

सुगंधित चंदन वृक्ष कट जाने पर अपनी सुगंध नही छोड़ता। बूढ़ा हाथी भी अपनी चचलता नही छोड़ता। कोल्हू में पेरी गई ईख भी अपने मिठास को नही छोड़ती।

इसी प्रकार दरिद्र भी कुलीन, सुशीलता आदि गुणों को त्यागा नही करता।

अलिरयं नलिनिदल मध्यम
कमलिनी मकरन्दमदालस।
विधि वशात्प्रदेशमुपागत
कुटज पुष्परस बहु मन्यते ॥१६॥

यह एक भौंरा है जो पहले कमलदल के बीच में कमलिनी की सुगंध लेता रहता था। संयोगवश वह अब परदेश जा पहुंचा

है। वहा वह कौरैया के पुष्प रस को ही बहुत समझना है।

> बधनानि खलु सन्ति बहूनि
> प्रेमरज्जुकृत बन्धन मन्यत।
> दारुभेदनिपुणोपि षडङ्घ्रि
> निष्क्रियो भवति पङ्कज कोशे ॥१७॥

बन्धन ता बहुत से हैं परन्तु प्रेम की डोरी का बधन तो कुछ और ही है। जैसे काठ छेदने मे भ्रमर निपुण होने हुए भी कमल के काटने मे असमर्थ होकर उसमे फस जाता है।

> अमृतम्मत निधान नायको औषधीनां
> अमृत मय शरीर कान्ति युक्तोपि चद्र।
> भवति विगत रश्मिर्मण्डले प्राप्य भानो
> पर सदन निविष्ट को लघुत्व न याति ॥१८॥

यद्यपि चद्रमा अमृत का भडार है, औपधियों का स्वामी,है, स्वय अमृतमय है और कातिमान है तथापि जब वह सूय,मडल म पड जाता है तो किरण रहित हो जाता है। पराये घर जाकर भला कौन ऐसा है कि जिसकी लघुता साबित न होती हो।

> उर्व्यां कोऽपि महीधरो लघुतरो दोर्भ्यांधृतो लीलया।
> तेनत्व दिवि भूतले च सतत गोवर्धनो गीयमे॥
> त्वां त्रलोक्यधर वहामि कुचयोरग्रेणदत गण्यते।
> कि वा केशव भाषणेन बहुना पुण्यैर्यशो लभ्यते॥१६॥

किसी एक हल्के से छोटे पवत को अनायास हाथो पर धारण किया, जिससे आप स्वर्ग और पृथ्वी मे सर्वदा गोवर्धन धारी कहलाते है पर तीनो लोको को धारण करने वाले आपको कुचो के अग्रभाग पर धारण करती हू, इसकी कोई गिनती ही नहीं है। यही समझ लें कि बडे पुण्य से ही यश मिलता है।

अध्याय सोलह

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये।
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः॥
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं।
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्॥१॥

यह संसार रूपी बंधन से छूटने के लिए मैंने न तो ईश्वर के चरणों का ध्यान किया, न स्वर्ग के दरवाजे तोड़ने में समर्थ धर्म का ही अर्जन किया और न स्त्री के दोनों कुच और जांघों का आलिंगन ही किया। अतः मैं माता के युवा वय रूपी वृक्ष के काटने में मात्र कुल्हाड़ा ही हुआ।

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः॥२॥

जो स्त्री दूसरों से बात करती है, नखरे से देखती है किसी दूसरे की ओर, मन में सोचती है किसी और को, स्त्रियों का प्रेम कभी एक स्थान पर नहीं रहता है।

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी।
स तस्या वशगो भूत्वा नृत्येत्क्रीडाशकुन्तवत्॥३॥

जो मूर्ख यह समझता है कि यह कामिनी मुझ पर मुग्ध हो गई है, वह उसके वश में होकर खिलौने की चिड़िया के समान नाचा करता है।

कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्यापदोऽस्तंगताः।
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः?
कः कालस्य न गोचरत्वमगमत् कोऽर्थी गतो गौरवम्?
को वा दुर्जनदुर्गुणेषु पतितः क्षेमेण यातः पथि॥४॥

ससार मे कौन ऐसा विषयी पुरुष है कि जिसकी सभी विपत्तिया नष्ट हो गई हैं ? कौन ऐसा है जिसका मन स्त्रियो द्वारा खडित न हो गया हो ? कौन ऐसा है जो राजा का प्रिय है ? कौन ऐसा है जो काल दृष्टि मे बच गया हो ? कौन ऐसा है जो किसी के यहा मागने के लिए जाकर भी गौरव को प्राप्त हुआ है ? कौन ऐसा है जो दुष्टो की दुष्टता मे फसकर भी कुशलतापूर्वक दुनिया का रास्ता तय कर गया है।

न निर्मिता केन न दृष्ट पूर्वा न श्रूयते हेममयी कुरगी ।
तथाऽपि तृष्णा रघुनदनस्य विनाश काले विपरीत बुद्धि ॥५॥

प्रथम किसीने स्वर्ण मृग को न बनाया न देखा व सुना था तो भी रघुनदन का लोभ उस पर हुआ अर्थात विनाश के समय समझदारो की भी बुद्धि विपरीत हो जाती है।'

गुणैरुत्तमता याति नोच्चैरासन सस्थिता ।
प्रासाद शिखरस्थोऽपि किं काक गरुडायते ॥६॥

मनुष्य अपने गुणो से उत्तम बनता है। ऊचे सिंहासन पर बैठ जाने से नही। क्या भवन के भव्य शिखर पर बैठकर कौआ कौए से गरुड बन जाएगा ?

अतिक्लेशेन ये चार्था धर्मस्यातिक्रमेण तु ।
शत्रूणां प्रणिपातेन ते ह्यर्था न भवतु मे ॥७॥

ऐसा धन जो अत्यत पीडा से, धर्म त्याग से, शत्रु जन की शरण से मिलता हो, वह धन मुझे प्राप्त न हो।

गुणा सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पद ।
पूर्णेन्दु किं तथा वद्यो निष्कलको यथा कृश ॥८॥

गुणो की पूजा ही सर्वत्र होती है। धन चाहे ... नही पूजा जायेगा। जिस प्रकार पूर्ण ... की जाती है।

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला ।
या तु वेश्येव सा मान्या पथिकैरपि भुज्यते ॥९॥

वधू के समान भीतर बद रहने वाली सम्पत्ति का लाभ क्या करे या वेश्या के समान सब साधारण राहगीरो के भोग मे आवे उससे भी क्या लाभ ?

परप्रोक्तगुणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत ।
इन्द्रोऽपि लघुता याति स्वय प्रख्यापितगुण ॥१०॥

दूसरे मनुष्य जिसके गुणो की प्रशसा करें वह गुणहीन होता हुआ भी गुणी हो जाता है और अपने मुह अपने गुणो का बखान करने से तो इद्र भी छोटे ही माने जायेंगे।

विवेकिनमनुप्राप्तो गुणो याति मनोज्ञताम ।
सुतरा रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम ॥११॥

गुणी भी समझदार के पास जाकर सुन्दरता पाता है जब रत्न शीशे मे जड दिया जाता है तभी सुन्दर जचता है।

गुण सर्वत्र तुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रय ।
अनर्घ्यमपि माणिक्य हेमाश्रयमपेक्षते ॥१२॥

अकेला पुरुष दुख पाता है। अनमोल माणिक्य भी जब तक सोने मे नही जडा जाता है, तब तक बेकार हो रहता है।

तृण लघु तृणात्तूल तूलादपि च याचक ।
वायुना किं न नीतोऽसौ मामय याचयिष्यति ॥१३॥

सर्वाधिक हल्की वस्तु तृण है तृण से भी हल्की रुई है, रुई से भी हल्का है याचक। अब प्रश्न यह है कि इतने हल्के जीव को वायु क्यो न उडा ले गया। कहते है कि वायु ने उसे इसलिए नही उडाया कि मेरे पास भी आकर कुछ माग न बठे।

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु ।
अतृप्ता प्राणिन सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ॥१४॥

धन, जीवन, स्त्री और भोजन इन चार चीजो से ससार के

सभी प्राणी हमेशा अतृप्त रहे है। सब इनसे अतृप्त होकर ही चले गए जाएगे और चले जा रहे है।

प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तव ।
तस्मात्तदेव वक्तव्य वचने का दरिद्रता ? ॥१५॥

मीठा वचन बोलने से सभी जीव प्रसन्न होते है। इस कारण मीठा बोलना ही श्रेयस्कर है। मीठ वचन कहने मे भला दरिद्रता क्यो ?

पुस्तकेषु च या विद्या पर हस्तेषु यद्धनम ।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम ॥१६॥

बिना कठ मे रहे पुस्तक की विद्या और दूसरो के हाथ मे अपना कमाया हुआ धन समय पडने पर नही आता है।

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहाबलिक्रिया ।
न क्षीयन्ते पात्र दानमभय सर्वदेहिनाम ॥१७॥

वैसे दान, यज्ञ, होम, बलि यह सब नष्ट हो जाते है परतु सत्पात्र को दिया गया दान और सपूण जीव का दिया अभयदान ये कभी नष्ट नही होते है।

ससार कूट वृक्षस्य द्वौ फले अमतोपमे ।
सुभाषित च सुस्वाद सगीत सज्जने जने ॥१८॥

इस ससार रूपी वृक्ष के दो अमृत फल है। एक अच्छी भली वातें और दूसरा सज्जनो की सगति।

जन्म जन्मनि चाभ्यस्त दानमध्ययन तप ।
तेनवाऽभ्यास योगेन देही वाऽभ्यस्यते ॥१९॥

दान, अध्ययन और तप ये जन्म-जन्म के अभ्याम से होते है और प्राणी बार बार इसी का अध्ययन करता रहता है।

अध्याय सत्रह

पुस्तक प्रत्याधीत नाधीत गुरुसंनिधौ ।
सभामध्ये न शोभन्ते जारगर्भा इव स्त्रियः ॥१॥

जिन लोगों ने विद्या गुरु से न पढ़कर स्वयं पुस्तक ही से उसका अध्ययन किया है, वे समाज में व्यभिचार से गर्भ धारण करने वाली स्त्री के समान शोभा नहीं पा सकते हैं।

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकाया विषं मुखे ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वाङ्गे दुर्जने विषम् ॥२॥

सर्प के दांत में, मक्खी के सिर व बिच्छू के पूंछ में विष होता है परन्तु दुर्जन मनुष्य के संपूर्ण शरीर में विष भरा रहता है।

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥३॥

जो वस्तु दूर है, जिसके लिए कठिन आराधना की आवश्यकता पड़ती है और जो अपने से दूर है वे सभी वस्तुएं भी तपस्या से साध्य हो सकती हैं, क्योंकि तपस्या सर्वाधिक प्रबल चीज है।

अशक्तस्तु भवेत्साधुः ब्रह्मचारी च निर्धनः ।
व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता ॥४॥

शक्तिहीन साधु बनता है। धनहीन ब्रह्मचारी बनता है। रोगी देव भक्त बनता है और वृद्ध स्त्री पतिव्रता बनती है।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः ।
सत्यं यत्तपसाच किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥

सौजन्य यदि किं गुणं सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनै ।
सन्विद्या यदि किं धनैरपयशो मयद्यस्ति किं मृत्युना ।।५।।

लोभी जन को दूसरो के दोपो से क्या प्रयोजन ? चुगल-खोर को अन्य के पापो से क्या प्रयोजन ? सत्यवादी को तप से क्या ? मन शुद्ध है तो तीर्थाटन से क्या ? सज्जन को दूसरो के गुणो से क्या ? अपना प्रभाव है तो भूपण से क्या ? अच्छी विद्या होने पर धन मे क्या ? अगर अपशय है तो मृत्यु ने क्या लाभ है ?

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मी यस्य सहोदरी ।
शखो भिक्षाटन कुर्यान्नमुदतमुतिष्ठते ।।६।।

वह चमका शख जिसका पिता रत्नो की खान है। लक्ष्मी जिसकी बहिन है। यदि भीख मागता है तो निश्चय है कि बिना दान दिए धन नही मिलता।

कृते प्रतिकृति कुर्यात हिंसने प्रतिहिंसनम् ।
तत्र दोषो नपतित दुष्टे दौष्टय समाचरेत ।।७।।

उपकारी के प्रति उपकार, हिंसक के प्रति हिंसा करने म कोई दोप नही है। दुष्ट के साथ दुष्टता करनी ही चाहिए।

नान्नोदक सम दान न तिथि द्वादनी समा ।
न गायन्या परो मन्त्रो न मातुर्दैवत परम ।।८।।

दान, अन्न के समान कोई नही होता। कोई तिथि द्वादशी के समान नहीं होती। कोई मन्त्र गायत्री से बढकर नही होता है। कोई देवता माता से बढकर नही होता है।

पत्युराज्ञा बिना नारी उपोष्य व्रतचारिणी ।
आयुष्य हरते भर्तु सा नारी नरक व्रजेत ।।९।।

जो स्त्री पति की आज्ञा के बिना व्रत या उपवास करती है तो वह अपने पति की आयु हरती है और अत मे नरकगामिनी होती है।

सद्य प्रज्ञा हरेत्तुण्डो सद्य प्रज्ञा करो वचा ।
सद्य शक्तिहरा नारी सद्य शक्तिकर पय ॥१०॥

कुंदरु बुद्धि को तत्काल हर लेता है और बुद्धिवल को तुरत वद्धि करती है । स्त्री शक्ति को तुरत हर लेती है दूध बल को शीघ्र बढाता है ।

दानेन पाणिन तु कङ्कणन,
स्नानेन शुद्धिन तु च दनेन ।
मानेन वत्तिन तु भोजनेन,
ज्ञानेन मुक्तिन तु मण्डने ॥१८॥

हाथो की शोभा ककण स नहीं दान से है । चदन लेपन से शरीर शुद्धि नही, स्नान से होती है । सज्जनो की तृप्ति सम्मान से होती है, न कि भोजन से । उसी प्रकार मुक्ति ज्ञान स होता है अच्छी वेश-भूषा और श्रृगार से नही ।

न दानात शुद्धचते नारी नोपवास शतरपि ।
न तीथ सेवया तद्वद भर्तु पादोदकैयथा ॥१२॥

स्त्री न तो दान करने से उतनी पवित्र होती है न सैकडो उपवास तथा तीर्थाटन के सेवन से, जितना कि पति के चरणोदक से शुद्ध होती है ।

आहार निद्रा भय मथुनानि,
समानि चतानि नणा पशूना ।
ज्ञान नराणामधिको विशेषो,
ज्ञानेन हीना पशुभि समाना ॥१३॥

भोजन, निद्रा, भय मैथन ये बातें मनुष्य व पशु म एक समान हैं । मनुष्य को ज्ञान की ही विशेषता है, ज्ञान न होने से मनुष्य पशु समान है ।

पादेशेप पीतशेप सन्ध्याशेप तथव च ।
श्वान मूत्र सम तोय पीत्वा चन्द्रयणा चरेत ॥१४॥

किसी गुणी को अपमानित करके उसे अपने यहा से निकाल देना है, तो इससे उन्हीं की हानि होती है, गुणी तो कही न कहीं पहुचकर अपना आसन जमा ही लेगा।

राजा वेश्या यमश्चाग्नि चौरा बालक याचका ।

पर दुख न जानति अष्टमा ग्राम कण्टक ॥१९॥

राजा, वेश्या, यम, अग्नि, चोर, बालक, भिक्षुक और ग्राम मे झगडा लगाने वाला, ये आठ प्राणी दूसरे के दुख को दुख ही नही समझते।

अध पश्यसि किं बाले ! पतितं तव किं भुवि ?

रे रे मूर्ख ! न जानासि गत तारुण्य मौक्तिकम ॥२०॥

कोई भी स्त्री किसी पुरुष को देखकर लज्जा भाव से सिर नीचा करके एक तरफ खडी हो गई। इस पर भी उस बेहया पुरुष ने उसे छेडते हुए पूछा—बाले ! तुम्हारी कोई चीज गिर गई है ? क्या ढूढ रही हो ? इस पर उसने झुझलाकर जवाब दिया—अरे मूर्ख ! तू नही जानता ? यहा मेरी जवानी का मोती खो गया है।

व्यालाश्रयापि विफलापि सकण्टकापि

वक्रापि पङ्क सहितापि दुरासदापि ।

गन्धेन बन्धुरसि केतकि ! सर्व जन्तो

रेको गुण खलु निहन्ति समस्त दोषान ॥२१॥

हे केतकी ! यद्यपि तू सापो का घर है, निष्फल है, तेरे मे काटे भी है, कीचड मे तेरी उत्पत्ति है, परन्तु तुझमे गध है, इस कारण सब प्राणियो की बधु हो रही है। इसी प्रकार मनुष्य का एक गुण सपूर्ण दोषो को दूर कर देता है।

□□□